मई 2000

अनामा

(शाश्वत संस्कृति, धर्म एवं आध्यात्म का प्रतीक)

श्री० धरानंदनाथ अविनाशी, दिल्ली

अनामा

(शिवाशिव समूह की मुख्य पत्रिका)

अंक-१, वर्ष-१, चैत्र-वैशाख-२०५७, मई-२०००

संस्थापक-संरक्षक एवं उत्प्रेरक

अवधूत कृपानंदनाथ

परामर्शी : **भैरव भैरवानंदनाथ**

संपादक मंडल :

भैरव डॉ० प्रबुद्धानंदनाथ-*प्रमुख कार्यकारी संपादक*

भैरव धरानंदनाथ

भैरव सच्चिदानंदनाथ

भैरव प्रपन्नानंदनाथ

भैरवी माँ मंजूश्री

संपादकीय सूत्र : **भैरव डॉ० प्रबुद्धानंदनाथ**

प्रोफेसर्स कॉलोनी, आरा-८०३

दूरभाष : २६८५६(०६१८१)

प्रकाशक : **अभिनव प्रकाशन**

एच-२५-ए, जय प्रकाश नगर, दिल्ली-११००५३

दूरभाष - ०११-२१८३६८५

मुद्रकः **चंदू प्रैस**, शकरपुर, दिल्ली-११००६२

आवरण चित्र निर्देशन : **सुश्री सुजाता उपाध्याय**

लेज़र टाईपसैटिंग, कलर प्रोसेसिंग : **अभिनव कम्प्यूटैक**

दूरभाष - ०११-२१८३६८५

सर्वाधिकार सुरक्षित, संपर्क सूत्र

©कमला मणि उपाध्याय

राजरोशन भवन, अलकापुरी, रातू रोड़, रांची-८३४००१

दूरभाष : ०६५१-३०५८७४

मूल्य :	(भारत में)	रू. 12/-	(वार्षिक) रू. 141/-
	(विदेश में)	1 $	(वार्षिक) 10$

विषय सूची

१. प्रेरक प्रसंग – मोदक प्रिय गणेश

२. विजयादशमी एवं संभावना पर्व का संदेश – आशीर्वचन

३. अलौकिक विभूति – अवधूत दत्तात्रेय

४. प्रकीर्ण : दुर्गा सप्तशती वांछा कल्पतरु है

५. तंत्रालेखन : अर्धनारीश्वर : दर्शन एवं साधना

६. तंत्रालेखन : जिहि सुमिरत सिधि होय :
गणपति से संबंधित कतिपय तांत्रिक प्रयोग

७. वेद-वातायन : वेदों में शक्ति-तत्व

८. व्यवहार में तंत्र : राम चरित मानस से तांत्रिक प्रयोग

६. लौकिक तंत्र-मंत्र : साबर मंत्र जाल जेहि सिरजा

१०. आध्यात्म के स्रोत : तीर्थ (महासिद्ध पीठ : विंध्याचल)

११. ज्ञान-विज्ञान : स्फोट् ब्रह्म : नाद से अस्तित्व

१२. योग-विज्ञान : योग-साधना से ही संभव है चेतना का उर्ध्वारोहण

१३. चलते-चलते : शिवा-शिव समूह समाचार

१४. आपके विचार : आपके पत्र (अगले अंक में)

१५. आपकी समस्याये : (अगले अंक में)

१६. गुरु पूर्णिमा एवं संभावनापर्व का संदेश - १६६६

विशेष : सभी इच्छुक विद्वान सज्जनों से आग्रह है कि आध्यात्मिक लेख निःशुल्क भेजकर हमारी पत्रिका के श्रेष्ठ प्रकाशन में हमारा सहयोग करें। इसमें मात्र लेख ही प्रकाश्य है।

चेतावनी : इस पत्रिका में दिए गए यंत्र तथा उनकी साधना प्रक्रिया प्रामाणिक तथा अनुभूत है, किन्तु उनकी साधना किसी सद्गुरु या योग्य तांत्रिक साधक की देख-रेख में करें अन्यथा असावधानी तथा त्रुटिवश हुए परिणाम के लिए संपादक मंडल तथा लेखक उत्तरदायी नहीं होंगे।

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः, पापात्मानां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजन प्रभवस्य लज्जा, तां त्वां नताः स्म परिवालय विश्वम् ।।

अवधूतमुनि समारभ्य, मानसदास च मध्यगां।
अस्मदाचार्यपर्यन्तं वन्दे गुरू परम्पराम् ।।

मोदक प्रिय गणेश

शिवापुत्र गणेश एवं कुमार कार्तिकेय के अत्यन्त सुन्दर, अद्भुत लावण्य अलौकिक विग्रह को देखकर देवगण अत्यन्त प्रसन्न एव विमुग्ध हो उठे और उन्होंने माता पार्वती के दर्शन की जिज्ञासा लिए उनकी प्रार्थना एवं अभ्यर्थना प्रारंभ कर दी । माता पार्वती के चरणों में उन्हें अगाध श्रद्धा हुई तथा उनके हाथों में उन्होंने एक दिव्य लड्डू रख दिया । मोदक देखकर दोनों भाइयों ने अपनी माता से उसे मांगा तो माता ने उन्हें इसके गुण गिनाते हुए कहा कि इस मोदक की गंध से ही अमरत्व की प्राप्ति होती है। निश्चय ही इसे सूंघने और खाने वाला सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता, मर्मज्ञ, सर्वतंत्र प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान, ज्ञान-विज्ञान में निष्णात एवं सर्वज्ञ हो जाता है ।

अतएव माता पार्वती ने एक शर्त रखी कि जो सम्पूर्ण तीर्थों का भ्रमण कर सबसे आगे पहुँचेगा वही इस मोदक का अधिकारी होगा । पिता ने भी कहा है कि जो धर्माचरण द्वारा अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित करेगा उसे ही यह लड्डू मिलेगा ।

माता की आज्ञा पाते ही चतुर षडानन कार्तिकेय अपने वाहन मयूर पर बैठकर त्रैलोक्य के तीर्थों की यात्रा पर निकल पड़े । मुहूर्त भर में ही उन्होंने सभी तीर्थों में स्नान कर लिया। इधर भगवान गणपति लंबोदर अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति से माता-पिता की प्रदक्षिणा कर उनके समक्ष हाथ जोड़े खड़े हो गए । कुमार कार्तिकेय ने पहुँचते ही पिता से आग्रह किया कि उन्हें मोदक प्रदान किया जाए ।

माता ने कहा कि सम्पूर्ण तीर्थों में किया हुआ स्नान, सम्पूर्ण देववृन्दों का नमस्कार एवं भजन तथा सभी व्रतों, मंत्रों तथा अनुष्ठानों का प्रतिफल और भोग, संयम का पालन इनका सम्पूर्ण योगफल माता-पिता के पूजन के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं होते ।

माता ने दोनों पुत्रों पर दृष्टिपात करते हुए कहा, "अतएव यह पुत्र गजानन सभी पुत्रों और गणों से बढ़कर है । यह देव निर्मित अमृतोपम मोदक भी गणेश का हुआ । माता-पिता की भक्ति के कारण यह सभी धार्मिक अनुष्ठानों और यज्ञादि में अग्रपूज्य होगा" ।

भगवान शिव ने भी पार्वती के मत की पुष्टि करते हुए कहा, "इस गणेश की अग्रपूजा से सभी देवगण प्रसन्न हो और अत्यन्त प्रसन्नता से श्री गणेश गणाध्यक्ष के पद पर सुशोभित किए गए" ।

('पद्मपुराण' से)

अवधूत दत्तात्रेय

वाक्ये वाक्ये च वेदानि, तीर्थानि च पदे-पदे ।
द्रष्टौ द्रष्टौ च कैवल्यम् सोऽवधूतः श्रियस्तु नमः ।।

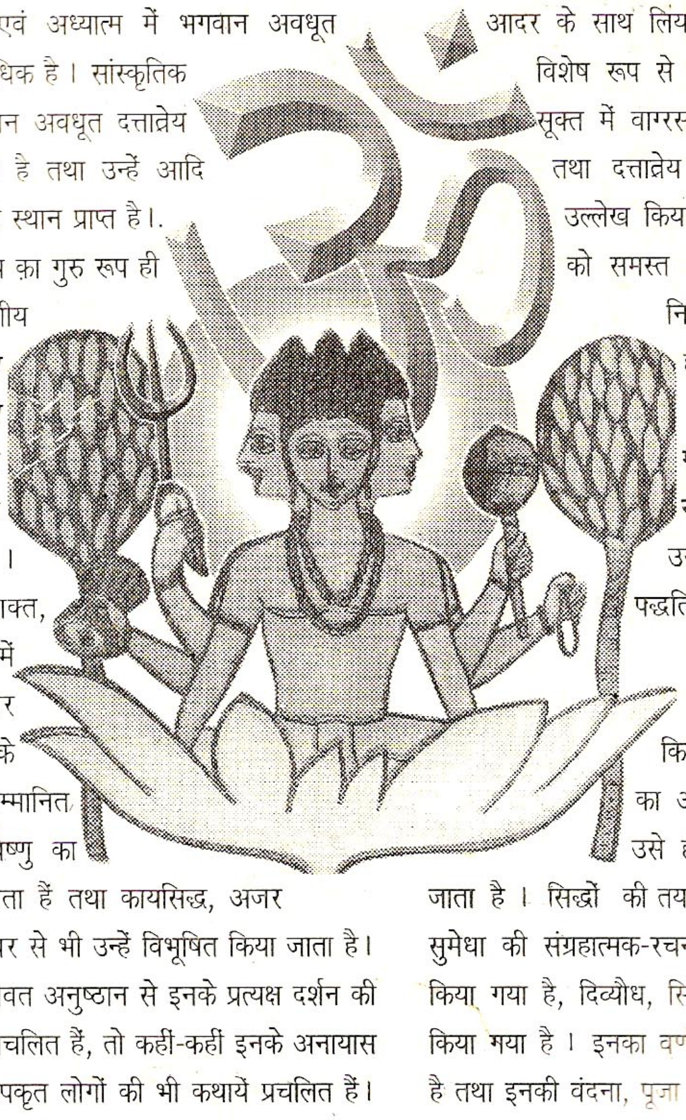

भारतीय धर्म एवं अध्यात्म में भगवान अवधूत दत्तात्रेय का महत्व सर्वाधिक है। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी भगवान अवधूत दत्तात्रेय का अवदान अतुलनीय है तथा उन्हें आदि गुरु के रूप में सर्वमान्य स्थान प्राप्त है।. भगवान अवधूत दत्तात्रेय का गुरु रूप ही वरेण्य तथा प्रातः स्मरणीय है। ***गुणाति उपदेशिति ब्रह्मज्ञानं स्वभक्तेम्भ इति*** गुरु और इस दृष्टिकोण से अवधूत दत्तात्रेय का स्थान अतिविशिष्ट है। वैष्णव, शैव एवं शाक्त, सम्प्रदायों के गुरु रूप में प्रतिष्ठापित अवधूतेश्वर निर्गुण एवं ब्रह्मज्ञान के उपदेष्टा के रूप में सम्मानित हैं। इन्हें भगवान विष्णु का छठा अवतार माना जाता हैं तथा कायसिद्ध, अजर एवं अमर श्रेष्ठ योगीश्वर से भी उन्हें विभूषित किया जाता है। इनके मंत्र-तंत्र का विधिवत अनुष्ठान से इनके प्रत्यक्ष दर्शन की अनेकशः किंवदन्तियां प्रचलित हैं, तो कहीं-कहीं इनके अनायास दर्शन प्राप्तकर इनसे उपकृत लोगों की भी कथायें प्रचलित हैं। इनका जीवन-चरित्र भी विष्णु-पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, मार्कण्डेय पुराण, मत्स्य पुराण, अग्नि पुराण, ब्राह्मण पुराणों के अतिरिक्त श्री मद्भागवत् में इनके चौबीस गुरुओं का वर्णन मिलता है। इसके अलावा अनेकानेक ग्रंथों में अवधूत दत्तात्रेय का प्रसंगवश उल्लेख मिलता है। नाथ सम्प्रदाय में भी अवधूत दत्तात्रेय को नवनाथों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। सिद्ध अवधूत मत में इनका नाम कौलमार्ग के प्रवर्तक आदि गुरु के रूप में भी परम तत्व द्रष्टा, मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ जी के साथ अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। वेद परम्परागत तथा विशेष रूप से ऋग्वेद में १०वें मंडल के १३६वें सूक्त में वाग्रसना योगियों के प्रसंग में ऋषभदेव तथा दत्तात्रेय आदिसिद्ध अवधूतों का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। सिद्धांमृत मार्ग में गुरु को समस्त मंगल-राशि के साथ-साथ यह भी निरूपित हुआ है कि केवल अवधूत ही गुरु रूप में वरेण्य है।

अस्मिन्-मार्गे सर्वश्रेयो मूलभूतो गुरुदेव, स च अवधूत एवं नान्यः। महायोगी गोरखनाथ जी ने उसके निर्मल स्वरूप की सदसिद्धान्त पद्धति में व्याख्या करते हुए उसका योगसंलिष्ट व्यक्तित्व का अत्यन्त हृदयग्राही मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया है। जो प्राकृतिक विकारों, पंचों का अवधूनन अथवा त्याग कर देता है उसे ही अवधूत पद से अभिहित किया जाता है। सिद्धों की तय श्रेणियों में, जिनका वर्णन हरितायन सुमेधा की संग्रहात्मक-रचना 'परशुराम कल्प सूत्र' में वर्णन किया गया है, दिव्यौध, सिद्धौध और मानवौध से उल्लिखित किया गया है। इनका वर्णन तंत्रमत में भी सविस्तार मिलता है तथा इनकी वंदना, पूजा का भी विधान मिलता है। सिद्धौध सिद्धों में सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार के साथ अवधूत दत्तात्रेय को भी सिद्धौध सिद्धों में परिगणित किया गया है। अवधूत पंचम आश्रमी होते हुए भी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के प्रति यथेष्ट सम्मान भाव रखते हुए इन सभी आश्रमों से ऊपर उठकर सर्वगुणातीत होकर सर्वत्र परमात्म दर्शन करता है। अवधूत गीता में आया है—

आशापाश विनिर्मुक्ता आदि मध्यान्तनिर्मलम्।
अनन्तानन्द [illegible] अकार तस्यलक्षणम् ।।

वासना वर्जितंयेन वक्तव्यं च निरामयम् ।
वर्त्तमानेसु वर्तेत वकारंतस्य लक्षणम् ।।
धूलि धूसर गात्राणि धूत्तचित्त निरामयम् ।
ध्यान धारणा निर्मुक्तं धुकारं वरेण्य लक्षणम् ।।
तत्व चिंता येन धूता चिन्ता चेष्टा दिवर्गिता ।
तमंहकार र्निमुक्तं तकारं तस्य लक्षणम् ।।

(अवधूत गीताः ८/६-८)

सभी द्वन्द्वों से मुक्त, निर्मल अन्तःकरण माला अनन्त आनंद स्वरूप परमात्म दृष्टि से यहां विषय-वासनाओं से विनिर्मुक्तः सत्यवाची, वर्तमान में स्थित धूल-धूसरित, पवित्र एवं निर्दोष चित्तवाला तथा धारणा-ध्यानातीत रहता हुआ सर्वदा उन्मनी अवस्था में ध्यानावस्था में स्थित अवधूत योगी की महिमा अनिर्वचनीय है। नारद परिव्राजक उपनिषद् में भी दत्तात्रेय ऐसे अवधूत योगी की जीवन वृत्ति पर समस्त प्रकाश डाला गया है महाराष्ट्र में दत्तात्रेय सम्प्रदाय की मदनीयता आज भी सुरक्षित है तथा आकर्षण का केन्द्र है । गोरक्ष सिद्धांत-संग्रह में

दत्तात्रेयापि सिद्धानां नवनाथास्तथैव च ।
शंकर गुरुरूपेण बोधिताश्चात्म तत्वमिः ।।

दुर्गा गुरु पंक्ति पुरश्चरणार्णव में भी नवनाथों में अवधूत दत्तात्रेय का स्थान दिया गया है, अवधूत दत्तात्रेय की शिष्य परम्परा में अनेक ऐसे चिर परिचित नामों का समावेश है जो भारतीय संस्कृति के धरोहर के रूप में परिगणित हैं । उन्होंने कार्तवीर्य और मदालसापुत्र अलर्क को योगोपदेश से अनुग्रहीत किया था । राजा यदु, भक्त, शिरोंमणि प्रहलाद, विरोचन, परशुराम, कार्तिकेय, नहुष, सांकृति मुनि, नागार्जुन, आद्य शंकराचार्य, जनार्दन स्वामी तथा दास पंथ के अनेक संत-महात्माओं, श्री पाद आचार्य, नरसिंह सरस्वती एवं कीनाराम आदि अनेक संत, राजर्षियों, ऋषि-मुनियों तथा आचार्यों को सद्ज्ञान का उपदेश देकर स्वधर्मानुष्ठान पूर्वक सदुपदेश देकर कृतार्थ किया तथा आज भी उनके अनुग्रह प्राप्त साधकों की कमी नहीं है ।

मार्कण्डेय पुराण के १७वें से १८वें अध्याय में उनके चरित्र और ३७वें से ४३वें अध्याय में उनके चरित्र और उपदेश पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है । महर्षि अत्रि और उनकी पतिव्रता शिरोमणि भार्या अनुसूया के पुत्र रूप में उनका अवतार हुआ । अत्रि ब्रह्मा के पुत्र तथा प्रजापति थे उनका निवास दक्षिण दिशा में कहा गया है । अनसूया सांख्य योग के प्रवर्तक कपिल मुनि की बहन तथा कर्दम प्रजापति एवं देवहूति की पुत्री थी । देवहूति क्रमवर्त देश के अधिराजा स्वयंभुव मनु की कन्या थीं तथा उनकी माता का नाम शतरूपा था । अत्यन्त शालिनी वंश परम्परा से संयुक्त महासती अनुसूया तथा महात्मा तपोनिष्ठ महर्षि अत्रि को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि भगवान विष्णु के आवतार आदि गुरु भगवान अवधूत दत्तात्रेय के माता-पिता के रूप में उन्हें महान गौरव प्राप्त हुआ । सती अनुसूया की अप्रतिम पातिव्रत्य की परीक्षा लेने के लिए ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर को उनकी पत्नियों ने ईर्ष्यावश भेजा था । अत्रि महामुनि आश्रम से बाहर किसी यज्ञ में भाग लेने गए हुए थे और अनुसूया को एकान्त पाकर त्रिदेवों ने अपनी मर्यादा छोड़कर उनसे नग्न होकर भोजन कराने का आग्रह किया । अतिथि को देवता समझने वाली सती अनुसूया के लिए यह परीक्षा की घड़ी थी । उन्होंने अपने पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से अत्रि मुनि का स्मरण कर त्रिदेवों को शिशु रूप में बदल डाला तथा उन्हें खिलाया और स्तन-पान कराया । अपना तथा अपने पति की तपस्या को सार्थक करने वाली भगवती अनुसूया ने सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती के अनुयय-विनय पर त्रिदेवों को पुनः अपने स्वरूप में ला दिया । तीनों का प्रत्यक्ष दर्शन कर अत्रि तथा अनुसूया ने अपने जीवन की सार्थकता को ज्ञापित किया । त्रिदेवों के वरदान माँगने के आग्रह पर दम्पति ने उन्हें अपने पुत्ररूप में प्राप्त करने का वर मांगा । त्रिदेव इच्छित वरदान देकर अन्तर्ध्यान हो गए । इसके कुछ समय बाद ऋतुस्नाता भगवती अनुसूया को देखकर महामुनि अत्रि कामासक्त हो गए । उनके इस आचरण से मानो समुद्र के रूप में सोम-चन्द्रमा प्रकट हुए, यज्ञ से संतुष्ट होकर भगवान विष्णु ने अपने शरीरांश से अत्रि को दत्तपुत्र प्रदान किया, जिन्होंने साक्षात् नारायण के रूप में देवी अनुसूया का स्तनपान किया। रुद्रांश से दुर्वासा प्रकट हुए ।

अवधूत दत्तात्रेय की तपःस्थली के रूप में कावेरी का मैदानी भाग तथा सह्याद्रि क्षेत्र का भू-भाग प्राप्त है । उसमें भी सहयाद्रि क्षेत्र उनकी नव तपस्थली के रूप में विख्यात है । कार्तवीर्य अर्जुन को महर्षि गर्ग ने उपदिष्ट किया कि ये सह्याद्रि क्षेत्र में जाकर दत्तात्रेय की उपासना करें—

दत्तात्रेय महा भागं सह्याद्रिणी वृत्ताश्रमम् ।
तमाराधय भू-पाल प्रातिमो भुवन त्रयम् ।।

(मार्क०-१८/१२)

सह्याद्रिगिरि पर कार्तवीर्य ने तपस्या कर गुरुदत्तात्रेय को प्रसन्न किया। अजगर वृत्ति का अनुसरण कर निश्चेष्ट तथा निर्द्वन्द्व रहने के कारण उन्हें अजगर मुनि के नाम से भी अभिव्यंजित किया जाता है। श्रीमद्‌भागवत्‌ के सप्तम स्कंध के तेरहवें अध्याय में अजगर मुनि तथा प्रहलाद के बीच संवाद का वृतान्त आता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अवधूत दत्तात्रेय कावेरी नदी के तलहटी के सहयाद्रि पर्वत के निकट आश्रम बनाकर निवास करते थे तथा विचरण करते थे। वहीं प्रहलाद ने भी उनका दर्शन किया–

तंश्यानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि ।
रजस्थैस्तनूदेशै निर्गूढ़ामलतेजसम् ।।
ददर्श लोकान् वचरंल्लोकतत्वविवित्सया ।
वतोऽमात्यैः कतिपयैः प्रहलादो भगवत्प्रियः ।

(श्री मद् भा० ७/१३/१२-१३)

दत्तात्रेय ने अपनी दिनचर्या पर प्रकाश डालते हुए कहा कि दिन रात में जो कुछ स्वेच्छा से मिल जाता है उसी को ग्रहण कर संतुष्ट रहते हैं। इसी कारण उन्हें दिष्टभुक् कहा जाता है। अपनी आत्मानुभूति के रस में सदा निमग्न और निरत अवधूत दत्तात्रेय आत्मानंद में डूबे रहते हैं।

वसेऽन्यदपि सम्प्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम् ।
ततो निरीहो विरमेत् स्वानुभूत्याऽत्मनि स्थितः।।

(श्री मद् भा० ७/१३/४४)

मार्कण्डेय पुराण के योगी अवधूत दत्तात्रेय को तांत्रिक अवधूत के रूप में मुद्रायोषिता सन्निध आनन्दोपभोग में भी लीन दिखाया गया है। ऐसा लक्षित होता है कि मार्कण्डेय पुराण ने भगवान दत्तात्रेय को तंत्र एवं शैव योग के आदर्श समन्वय विग्रह के रूप में दर्शाना चाहा है कि वे द्वन्द्वातीत अवस्था में सर्वदा स्थित हैं यद्यपि निरन्तर माया लिप्त मुद्रायोषित संग में रहते हुए भी मायातीत जागतिक द्वन्द्वों से विवर्जित ही हैं। अपने पिता कृतवीर्य के निधनोपरान्त कृतवीर्य अर्जुन ने राज-काज के प्रति अपनी विरक्ति, प्रकट की थी किन्तु राज-काज से विमुख राजा की अधोगति होती है तथा उसे केवल नरक की प्राप्ति होती है, ऐसा सोचकर अपने मंत्रियों तथा परामर्शियों के कहने पर महामुनि गर्ग ने उन्हें अवधूत दत्तात्रेय की उपासना का मार्ग बताया। उन्होंने बताया कि तीनों भुवनों के पालनहार साक्षात् विष्णु के अवतार अवधूत दत्तात्रेय समदर्शी तथा नित्य योग युक्त सिद्ध पुरूष है। उनकी आराधना कर इन्द्र ने जम नामक दैत्य को पराजित किया तथा इन्द्र-पद प्राप्त किया। देवगुरु बृहस्पति ने उन्हें ऐसा परामर्श दिया था–

दत्तात्रेयं महाभागं सह्यद्रोणी कृताश्रमम् ।
तमाराधय भूपाल पातियोंभुवनत्रयम् ।।
योगयुक्तं महाभागं सर्वत्र समदर्शिनम्।
विष्णोरंशं जगद्धातुरवतीर्ण महीतले ।।
यमाराध्य सहस्राक्षः प्राप्तवान्थदमात्मनः ।
हतं दुरात्मनिर्दैत्यैर्जधान च दितेः सुतान ।।

(मार्क० १८/१२-१४)

अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए दत्तात्रेय आराध्य है। कार्तवीर्य ने उनके आश्रम में आकर उनकी विधिपूर्वक पूजार्चा की तो दत्तात्रेय के यह कहने पर कि मैं तो मुद्रायोषिता संग से आपकी अभीष्ट सिद्धि किस प्रकार कर सकता हूँ ? कार्तवीर्य ने कहा कि आप सर्वदा मायातीत होते हुए भी माया से ही युक्त समयाश्रित हैं तो दत्तात्रेय ने उन्हें वरदान दिया कि आप अपने प्रजा का पालन यथाविधि कीजिए तथा आपके राष्ट्र में पूरी शांति तथा समृद्धि बनी रहेगी। दत्तात्रेय ने पुनः कहा कि मेरे अनुग्रह से आप चक्रवर्ती के ऐश्वर्य से युक्त रहेंगे। मदालसापुत्र अलर्क ने दत्तात्रेय के श्री चरणों में उपस्थित होकर आत्मशांति और योगोपदेशामृत प्राप्त किया था। वह दुःख निर्वृत्यर्थ दत्तात्रेय जी के शरण में आया, जिसे उन्होंने उपदेश देकर कृतार्थ किया। ज्ञान प्राप्तकर अज्ञान से निवृत्त होना ही मुक्ति है, वही ब्रह्म से एकीभाव होकर प्राकृतिक गुणों से पृथक होता है। योग ही शक्ति है जिससे परम श्रेय की प्राप्ति होती है। सम्यक् ज्ञान से योग और योग से मुक्ति प्राप्त होती है। वैराग्यजनक दुख से ही सम्यक् ज्ञान होता है। दुख का कारण ममत्व है अतएव मुमुक्षु को ममता का त्याग करना चाहिए।

योगियों को पहले आत्मा द्वारा आत्मा (मन) को जीतकर आत्मस्वरूप में स्थित रहना चाहिए। प्राणायाम से राग-द्वेषादि विकारों को दग्ध करना चाहिए तथा प्रत्याहार द्वारा ईश्वर विरोधी गुणों का निराकरण करना चाहिए। प्रथमतः योगी को प्राणायाम साधन करना चाहिए जो प्राण एवं अपानवायु के विरोध से सम्पन्न होता है। मोक्ष प्रदाता प्राणायाम की चारों अवस्था ध्वस्ति, प्राप्ति, संचित और प्रसाद की प्राप्ति करनी

चाहिए। शुभाशुभ कर्मफल एवं वासना का सम होना ध्वरित; लोक-परलोक के भोगों के प्रति अनासक्त रहकर अपने आप में से संतुष्ट रहना प्राप्ति; सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि अदृश्य का ज्ञान प्राप्त करना संवित् तथा मन, पंच-प्राणवायु, इंन्द्रियां और उनके विषय प्राप्ति की अवस्था प्रसादावस्था है। योगी आत्मा में ही आत्म साक्षात्कार करता है। योगी के दर्शन से मन में अनुराग उत्पन्न होना, परोक्ष में उसका गुणानुवाद करना, सभी उसके समीप अभय को प्राप्त हों तो यह योगसिद्धि का लक्षण है :-

अनुराग जनोयाति, परोक्षे गुण कीर्तनम् ।
नविभ्यति च सत्वानि सिद्धैर्लक्षणमुत्तमम् ।।

(मार्क० ४६/६४)

अवधूत दत्तात्रेय ने योगियों को सदा अल्पाहारी तथा जितेन्द्रिय होने पर बल दिया, उन्होंने मन को प्रणव से युक्त कर सदा परमात्म चिंतन का सुझाव दिया :

चिन्तयेत् परमं ब्रह्म कृत्वा तत्प्रवणं मनः ।
योग युक्तः सदा योगी लघ्वाहारी जितेन्द्रियः ।।

(मार्क० ४०/१६)

आसक्ति का त्याग कर अक्रोध को उपलब्धकर स्वल्पाहारी एवं जितेन्द्रिय बनकर इन्द्रिय गहरों को अवरूद्ध कर मन को सदा ध्यान में लगायें रखें। नित्य योग युक्त रहने वाला योगी निर्जन प्रदेश, गुफाओं एवं एकान्त स्थानों में ध्यान करें। वेदों से यज्ञ कर्म श्रेष्ठ हैं, यज्ञों से जप, जप से ज्ञान मार्ग और उससे आसक्ति रहित, राग रहित ध्यान मार्ग श्रेष्ठ है। ऐसे ध्यान परायण को सनातन ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जो महात्मा एकाग्रचित, ब्रह्मपरायण, प्रमादरहित, पवित्र, एकान्त प्रेमी और जितेन्द्रिय होता है, वही ब्रह्म पद पर आरूढ़ होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

अवधूत दत्तात्रेय सिद्धौध हैं, उनका कोई गुरु नहीं है। वे आदिगुरु हैं तथा सभी सम्प्रदायों के आदि गुरु के पद पर वे सम्मानित हैं। राजा यदु और श्री दत्तात्रेय के संवाद में उन्होंने अपने २४ गुरुओं का उल्लेख किया है जो श्री मद् भागवत महापुराण के एकादश स्कंध के ७वें से ६वें अध्याय तक अवधूतोपाख्यान के शीर्षक से उल्लिखित है। दत्तात्रेय भी राजा यदु से कहते हैं–एते मे गुरवो राजन चतुर्विंशतिराश्रिताः (श्री मद् भा० ११/७/३५) ये २४ गुरु क्रमशः पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंगा, मधुमक्खी, हाथी, शहद निकालने वाला, हिरण, मछली, पिंगला-वेश्या, कुररपक्षी, बालक, कुंवारी कन्या, बाण बनाने वाला, सर्प, मकड़ी और भृंगी कीट हैं। पृथ्वी से क्षमा, वायु से अनासक्ति, आकाश से निर्लिप्तता, जल से पवित्रता, अग्नि से गुप्त रहना, चन्द्रमा से आत्मा की अनश्वरता, सूर्य से दान, कबूतर, अजगर से संतुष्ट रहना, समुद्र से प्रसन्न रहना तथा गंभीरता, पतंगा से इन्द्रियातीत रहना, मधुमक्खी से संग्रह न करना, हाथी से कामिनी-सेवन से दूर रहना, मधुहारी से लोभ न करना, हिरण से विषयी गीत में रस न लेना, मछली से स्वाद के वश में न होना, पिंगलावेश्या से आशा त्याग की, कुररपक्षी से संग्रह न करने की, बालक से आत्मरत रहने की, कुँवारी कन्या से अकेले विचरण करने की, बाण बनाने वाले से मन को वश में करने की, सांप से अपना घर नहीं बनाने की, मकड़ी से मायाजाल से दूर रहने की, भृंगी कीट से एकाग्र रहने की कला तथा शिक्षा ली। मोक्ष प्राप्त करने के लिए निरासक्त रहना चाहिए। वह ममता तो रखे पर मोह नहीं रखे तभी अनासक्त रह सकता है।

दत्तात्रेय संहिता प्रमाणित करता है कि अवधूत दत्तात्रेय नग्न-योग परम्परा के अवधूत योगी है। ऐसा इसलिए भी कहा जा सकता है कि उनके अचला की सहज समरसता महायोगी गोरखनाथ की सबरियों तथा पदों में भी मिलता है। अवधूत दत्तात्रेय तथा महायोगी गोरखनाथ का संवाद तथा साक्षात्कार के विवरण, जो गोरखवाणी में संग्रहीत ज्ञान दीप में आया है, से भी ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के दर्शन तथा क्रिया में पर्याप्त समानता है। त्रिपुरा संप्रदाय के अनेक योगियों के नाम नाथ योगियों से अभिन्न हैं। दत्तात्रेय जी ने त्रिपुरा तत्व पर १८ हजार श्लोकों की दत्त संहिता की रचना की जो परशुराम कल्प सूत्र में किन्हीं परशुराम नामक आचार्य द्वारा लिखित ५० खंडों तथा ६ हजार सूत्रों में इस ग्रंथ का संक्षेपण किया गया है जिसे हरितायन सुमेधा ने प्रस्तुत किया है। इस ग्रंथ की दो टीकायें हैं - पहली टीका उमानंदनाथ की जिसका शीर्षक, "नित्योत्सव" है तथा दूसरी टीका इसका शुद्धिकरण है जिसे किन्हीं रामेश्वर ने लिखा है। महार्णव तंत्र में भी भिन्न-भिन्न दिशाओं में न्यास करने की विधि दी गई हैं जिसके आधार पर अवधूत दत्तात्रेय का संबंध नाथपंथ से बड़ा ही स्पष्ट है। गोरखनाथ जी और दत्तात्रेय जी को परस्पर वही सम्मान नाथ सम्प्रदाय में प्राप्त है जो शिव और विष्णु का है।

गोरखनाथ जी ने अवधूत दत्तात्रेय की प्रशंसा में कहा है –

स्वामी दरसन तुम्हारा देव । आदि अंत मधिपाया भेव ।।
गोरख मणई दत्र प्रणाम । भोग जोग परम निधान ।।

(गोरखनाथी, ज्ञानदीप-५१)

अवधूत दत्तात्रेय का प्रभाव महाराष्ट्र में व्यापक रूप से आज भी देखने को मिलता है। बारकरी सम्प्रदाय (वैष्णव) पर भी उनका प्रभाव तथा अनुग्रह प्रत्यक्ष है। महाराष्ट्र में दत्तात्रेय की उपासना, बीजमंत्र, षडक्षर आदि मंत्रों का उल्लेख दत्तात्रेय उपनिषद में किया गया है। इसका मांगलिक श्लोक है –

दत्तात्रेयी महाविद्या संवेद्यानंद विग्रहम् ।
त्रिपान्नारायणाकारं दत्तात्रेयमुपास्महे ।।

प्रारंभ में ही ब्रह्मा ने भगवान से पूछा कि तारक मंत्र क्या है तो उत्तर मिला कि सत्यानन्द चिदात्मक सात्विक मेरे धाम की उपासना करनी चाहिए जहां दत्तस्वरूप में मैं सदा स्थित हूँ। ब्रह्मा ने नारायण का ध्यान कर बताया कि 'दं' ही हंस, दां ही उसका दीर्घरूप बीज है। वह एकाक्षर है तथा तारक है। समस्त जगत बटबीज में स्थिति की तरह दत्त बीज है। दत्तात्रेयोपनिषद् में दत्तात्रेय के षडक्षर, अष्टाक्षर तथा द्वादशाक्षर मंत्र दिए गए है। षडक्षर मंत्र है–**दां ॐ ह्रीं क्लीं ग्लौं द्रां**। अष्टाक्षर मंत्र है–**दां दत्तात्रेयाय नमः**। द्वादशाक्षर मंत्र है–**आं ह्रीं क्रों एहि दत्तात्रेयाय स्वाहा। ॐ 'नमो भगवते दत्तात्रेयाय'** यह भी एक मंत्र दिया है। स्मरणमात्र से संतुष्ट, महाभय निवारक, महाज्ञानी, चिदानंद स्वरूप, बालोन्मत्त, पिशाच वेशधारी, महायोगी, अवधूत, अनुसूयांगवर्धन अत्रिपुत्र सर्वकामफलप्रद के लिए ओमिति की व्याहृति करनी चाहिए।

अवधूतोपनिषद् में अवधूत दत्तात्रेय से सांकृति मुनि ने पूछा कि अवधूत कौन है। परम कारुणिक महाज्ञानी अवधूतेश्वर ने बताया–

यथा रविः सर्वरसान्प्रभुक्ते, हुताशनश्चामिहि सर्वभक्षः।
तथैव योगी विषया प्रयुक्त नलिप्यते पुण्यपापैश्च शुद्धः ।।

संसार बंधन को जिसने छिन्न-भिन्न कर दिया तत्वमसि-चिंतन से सदा युक्त आश्रम और वर्णों से ऊँचा उठकर आत्मा में ही रमण करता रहता है तथा सूर्य की तरह रसों का स्वाद लेते हुए भी निस्पृह रहता है एवं सर्वभक्षी अग्नि की तरह अवधूत योगी भी विषयों का भोग करते हुए भी पाप-पुण्य से परे रहता है। दत्तात्रेय अवधूत ब्रह्म हैं जिनकी योग सिद्धि सच्चिदानंद स्वरूप अलख निरंजन-स्वसंवेध-परमेश्वर की अव्यय ज्योति है।

अवधूत दत्तात्रेय त्रिगुणात्मक परमेश्वर हैं। इनकी जयंती मार्गशीर्ष पूर्णिमा को पड़ती है तथा श्री यंत्र का भी प्रादुर्भाव उसी दिन हुआ है। श्री यंत्र के किसी प्रयोग के पूर्व इस मंत्र की एक माला जप अवधूत दत्तात्रेय का स्मरण करने के पश्चात् किया जाय तो निश्चय ही सिद्धि मिल जाती है। यदि इसका जाप दस हजार की संख्या में कर लिया जाय सिद्धि रात्रि में तो अवधूत दत्तात्रेय की कृपा साधक पर आजीवन बनी रहती है। मंत्र–

ॐ परब्रह्म परमात्मने नमः
उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय कराय ब्रह्म हरिहराय
त्रिगुणात्मने सर्व कौतुकानि,
दर्शय दर्शय दत्तात्रेयाय नमः तंत्र सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा।

इसके अतिरिक्त दत्तात्रेय यंत्र बनाकर 'द्रां' बीज का जप किया जाय तो अद्भुत चमत्कार होता है। दत्तात्रेय यंत्र में भगवान दत्तात्रेय के सभी मंत्र कर्णिकाओं में उल्लिखित हैं। अवधूत दत्तात्रेय की उपासना पूजा, स्तोत्र पाठ, मंत्र जाप, दत्त कवच, दत्त वज्रपंजर, दत्तहृदय, दत्तसहस्त्रनाम और दत्तात्रेय सिद्ध मंत्र आदि साधनाओं द्वारा की जानी चाहिए। कलियुग में श्री दत्तात्रेय की साधना अव्यर्थ होती है। उपासकों द्वारा स्मरण किए जाने पर गुरु दत्तात्रेय तत्काल उसके सान्निध्य में उपस्थित हो जाते हैं। उनकी यंत्र साधना से सभी सिद्धियां सहज सुलभ हो सकती हैं।

परशुराम को 'श्रीविद्यामंत्र' दत्तात्रेय ने ही दिया जो आज 'परशुरामस्तोत्र' के रूप में विद्यमान है, 'त्रिपुरा रहस्य' में दत्त-भार्गव संवाद, कार्तिकेय को अध्यात्मविद्या का उपदेश देकर उनके गुरु बने। प्रहलाद को स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक ज्ञान मार्ग का उपदेश देकर आदर्श कर्म योग की शिक्षा दी, राजानहुष को अध्यात्म योग का उपदेश, राजायदु को कवच की शिक्षा दी, कार्तवीर्य अर्जुन को अनेक तंत्र-मंत्रों की शिक्षा दी, उसे साम्राज्यादि वैभव प्रदान किया। नागार्जुन को रसशास्त्र, स्वर्ण निर्माण और धातु विद्या, की शिक्षा दी, गोरखनाथ जी को प्राणायाम, मुद्रा और समाधि चतुर योग का मार्ग बताया, आद्यशंकराचार्य को साक्षात् दर्शन देकर सहस्रनाम का उपदेश दिया जिसके आधार पर उन्होंने अद्वैत वेदान्त के दर्शन का प्रचार-प्रसार किया। संत जनार्दन स्वामी तथा दासोपंत के अनेक संतों को महालक्ष्मी भक्ति मार्ग का ज्ञान प्रदान किया। दक्षिण भारत के श्रीपाद आचार्य बल्लभ और नरसिंह सरस्वती महाराज भी उनके अवतार स्वरूप माने जाते हैं।

दुर्गा सप्तशती वांछा कल्पतरु है

दुर्गा सप्तशती मार्कण्डेय पुराण की हृदयस्थली है जैसे महाभारत का हृदय श्रीमद्भगवद् गीता है। यह ग्रंथ सभी मतों के साधकों में विशेषतया शाक्त मतावलंबियों में इसकी महिमा सर्वविदित है। शाक्त मत में तो इसे वही स्थान प्राप्त है जो वैष्णावों में रामायण का हैं। रामायण की तरह ही इसके संपुट पाठ का विधान है जिसका प्रयोग कर लाखों साधक अपना मनोरथ पूर्ण कर चुके हैं। विशेषकर चैत्र नवरात्रि तथा शरद नवरात्रि के अवसर पर शायद ही कोई सनातन धर्मावलंवी हो जिसके यहां इसका विधिवत् पाठ न किया जाता हो। वर्षों-वर्षों से यह पुस्तक भक्तों तथा साधकों का मनोरथ पूर्ण करने में कल्पतरु का काम करती रही है। इसे देवी के श्री विग्रह के रूप में भी सम्मान एवं प्रतिष्ठा मिलती रही है। ऐसी कोई कामना नहीं जो इसके सविधि अनुष्ठान से पूरी न हो। इसके प्रत्येक श्लोक को मंत्र स्वरूप माना गया है। मंत्रात्मक सप्तशती का पाठ भी आजकल लोकप्रिय हो रहा है, मगर यहां हम विस्तार में न जाकर मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत श्री दुर्गा सप्तशती की ही चर्चा करेंगे।

श्री दुर्गा सप्तशती के सात सौ श्लोकों में विरचित तेरह अध्यायों में देवी चरित्र का वर्णन हुआ है। मुख्यरूपेण तीन चरित्र हैं, प्रथम चरित्र (प्रथम अध्याय), मध्यम चरित्र (द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय) तथा उत्तम चरित्र में ९ अध्याय हैं। यह विन्यास भी रहस्यात्मक है। प्रथम चरित्र की देवता महाकाली, मध्यम चरित्र की महालक्ष्मी तथा उत्तम चरित्र की देवता महासरस्वती हैं। यहां सरस्वती (विद्या, ज्ञान) की श्रेष्ठता को काली (शक्ति) और महालक्ष्मी (धन) के ऊपर दिखाया गया हैं। वस्तुतः सप्तशती का गुंफन श्लोक तथा अध्याय तथा चरित्र तीनों में ही रहस्यात्मक है जिसके ऊपर एक अलग ग्रंथ का प्रणयन किया जा सकता है। ज्ञान से ही सब कुछ जीता या प्राप्त किया जा सकता है और सप्तशती का एक-एक श्लोक मंत्र मय है जिसका अनुष्ठान कर, साधक अपना अभीष्ट लाभ प्राप्त करते हैं। इस संबंध में मंत्र महार्णव, दुर्गोपासना कल्पद्रुम, कात्यायनी तंत्र तथा अन्यान्य तंत्र ग्रंथों के सर्वमान्य श्लोकों का उदाहरण दे रहा हूं जिसके अनुष्ठान का ज्ञान प्राप्त कर साधक अपनी मनोकामना पूर्ण करने के लिए अनुष्ठान करें। विंध्य क्षेत्र में सप्तशती का अनुष्ठान करने से निश्चय ही कामना पूर्ण होता है।

दुर्गा सप्तशती के अनुष्ठान के आदि अंत में एक माला नवार्ण मंत्र का सविधि जप कर लेना चाहिए। प्रत्येक अनुष्ठान

में शापोद्धार, उत्कीलन एवं संजीवनी विद्या का जप अत्यावश्यक है। इसका विशेष ध्यान रखकर ही संपुट लगाकर या पाठ में आचमन और संकल्प करने के बाद सविधि अनुष्ठान करें–

(१) संपुट लगाकर या बिना लगाए श्री दुर्गा सप्तशती का १०० पाठ करने से निश्चित रूप से मनोरथ पूर्ण होता है चाहे महान से महान अभिलाषा ही क्यों न हो।

(२) **ज्ञानिनामपिचेतांसि देवी भगवती हि सा । वलादाकृय मोहाय महामाया प्रयच्छति ।** वशीकरण तथा मोहन के लिए संपुट पाठ करें या सहस्र, अयुत् या लक्ष बार कार्यानुसार जपकर पुरश्चरण करें।

(३) ॐ से संपुटपाठ करने से दुर्गा सप्तशती के श्लोक सिद्ध होते हैं, किंवा सप्तशती सिद्ध हो जाती है।

(४) (क) सर्वकार्य सिद्धि के लिए संपुट पाठ करें अथवा सहस्र, अयुत, लक्षबार जपकर पुरश्चरण करें।

शरणागत दीनार्त परित्राणः परायणे ।
सर्वस्यार्ति हरे देवि नारायणि नमोऽस्तुते ।।

(ख) इस अर्थ श्लोक का संपुट पूर्ववत् फलदायी।

करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुमानि भद्राण्यविहंतु चापदः

(ग) ***एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षमः ।***
सूर्यात् जन्म समासाद्य सावर्णि भवितामनु ।

(५) धन-धान्य समृद्धि और सांसारिक ऐश्वर्य हेतु संपुट पाठ करें या फिर सहस्र, अयुत् लक्ष जपकर पुरश्चरण करें। पुत्र-प्राप्ति के लिए भी इसका अनुष्ठान अचूक है।

सर्ववाधाविनिर्मुक्तोधनधान्यसुतान्वितः ।
मनुष्यों मत प्रसोदन भविष्यतिन संशयः ।।

(६)

या देवी सर्व भूतेषु वृत्ति रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ।

या

ॐ त्वयैतत् पाल्यते देवित्वयत्स्येते च सर्वदा ।
विसृष्टि सृष्टि रूपात्वं स्थिति रूपा पालने ।।

(७) सकलव्याधि कैंसर, एड्स जैसी व्याधियों के लिए निम्न श्लोक का संपुट पाठ करें।

ॐरोगान शेषानपहांसि तुष्टा ददासि तुकामान्सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां नविपन्नराणां ।।

इसका लक्षबार जपकर चार पुरश्चरण करें। दीपशिखा में देवी का ध्यान करें।

(८) इस श्लोक द्वय से संपुट पाठ करने पर महान से महान व्याधि (कैंसर, एड्स, भगंदर) के चंगुल से रोगी मुक्त हो जाता है। इसे शान्ता महा मृत्युंजय भी कहा जाता है। इसका लक्ष बार जप किया जा सकता है।

सर्वमंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणि नमोस्तुते ।।
देहि सौभाग्यं आरोग्यं देहि मे परमं सुखं ।
रूयं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

अर्धनारीश्वर दर्शन एवं उपासना

भारतीय दर्शन का मत है कि सम्पूर्ण सृष्टि, अखिल ब्रह्मांड शिव-शक्ति के सम्मिलित रुप से उद्भूत हुआ है। ये दोनों ही तत्व सृष्टि में सतत् वर्तमान हैं और उनका पार्थक्य किसी भी प्रकार संभव नहीं है। वस्तुतः शिव-शक्ति ही पुरुप-प्रकृति हैं जिनकी रचना धर्मिता से सुशोभित है यह ब्रह्मांड। इसका ऐक्य या युग्म भाव ही अर्धनारीश्वर का विग्रह है। पुराणों में इनका अनादि नित्य सिद्ध योग है तथा तंत्र ग्रंथों में चन्द्र एवं चन्द्रिका के सदृश, जीव और शरीर के समान, जल और लहर की तरह अभिन्न माना गया है। दोनों क्षणमात्र भी एक-दूसरे से विलग नहीं होते अन्यथा सृष्टि की संभावना भी संभव नहीं। इनके परस्पर संबंध के बारे में स्पष्ट किया गया है–

एवं परस्परापेक्षा शिव-शक्ति मंत्रो स्थितः ।
न शिवेन बिना शक्तिर्न शक्ति बिना शिवः ।।

अन्यत्र भी

शक्ति तथा शक्तिमान दोनों की पारस्परिक अपेक्षा है। न तो शिव के बिना शक्ति है और न शक्ति के बिना शिवा स्थित हैं। शक्तिमान न रहे तो शक्ति को धारण कौन करेगा और शक्ति न हो तो शक्तिमान अनावश्यक उपादान है, अनावश्यक, व्यर्थ और अनुपयोगी। इसी से इकारहीन शिव शव-तुल्य हो जाता है–कतृत्वहीन। उसके स्वरूप की अभिव्यक्ति शिवा से संयुक्त होने पर ही संभव है। दोनों तत्वतः अभिन्न हैं। योगिक दृष्टि से भी हम सब अर्धनारीश्वर के प्रतीक हैं। हमारे दक्षिणांग में पिंगला स्वर में शिव स्थित है तथा वामांग में इड़ा नाम से शक्ति की अवस्थिति समझी गई है। 'ह' और 'ठ' क्रमशः शिव-शिवा का वाचक होने से हठयोग की परिभाषा वोधगम्य होती है। इन दोनों का सम्मिलन जो सुषुम्णा नाड़ी में होता है वही अर्धनारीश्वर की स्थिति है।

अर्धनारीश्वर के प्रतीक रूप इस जगत् के संबंध में शिव-पुराण, पद्मपुराण, श्रीमद्भागवत, वायुपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा ऋग्वेद की ऋचाओं में ग्रंथकारों ने अपने विचार दिए हैं। 'रुद्र हृदयोंपनिषद्' में इसी सिद्धान्त को निम्न रूप में रखा गया है–

रुद्र नर उमा नारी तस्मै तस्मै नमो नमः ।
रुद्रो ब्रह्मा उमावाणी तस्मै तस्मै नमो नमः ।।
रुद्रो विष्णु उमा लक्ष्मी तस्मै तस्मै नमो नमः
रुद्रः सूर्यः उमा छाया तस्मै तस्मै नमो नमः ।
रुद्रो सोम उमा तारा तस्मै तस्मै नमो नमः ।
रुद्रो दिवा उमा रात्रि तस्मै तस्मै नमो नपः ।
रुद्रो दिवा उमा वेदि तस्मै तस्मै नमो नमः ।
रुद्रो वन्हि उमा स्वाहा तस्मै तस्मै नमो नमः ।
रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्मै तस्मै नमो नमः ।
रुद्रो वृक्षं उमा वल्यी तस्मै तस्मै नमो नमः ।
रुद्रो पुष्पुमा गन्ध तस्मै तस्मै नमो नमः ।
रुद्रोऽर्थः असराः सोमा तस्मै तस्मै नमो नमः ।
रुद्रो लिंग उमा पीटं तस्मै तस्मै नमो नमः ।

सृष्टि में जितने पुल्लिंग प्राणी हैं, सब महेश्वर है और सभी स्त्रीलिंग प्राणी उमा हैं। यह समस्त स्थावार-जंगम जगत (सृष्टि) उमा महेश्वरात्मक है, शिवा-शिवात्मक हैं। समस्त व्यक्त जगत उमा का स्वरूप है और अव्यक्त जो भी है सब महेश्वर है। पुरूष रुद्र स्वरूप है और स्त्रियां उमा- इन दोनों स्वरूपों के युग्मरूप अर्धनारीश्वर रुद्र और भगवती उमा का नमस्कार करना चाहिए। इन मंत्र पदों के द्वारा जो महेश्वर और पार्वती को नमस्कार करते रहते हैं, वे सभी पापों से निर्लिप्त रहते है। ब्रह्म हत्यारा भी यदि जल में प्रविष्ट होकर इस मंत्र का जप करे तो सर्व पाप से मुक्त होकर शिवलोक प्राप्त करता है।

एलोरा की गुफा में अर्धनारीश्वर की एक भव्य प्रतिमा है जो पर्यटक को मुग्ध कर देती है। मूर्तिकार ने इस रहस्य की उसके आध्यात्मिक तत्व को भली भांति हृदयंगम किया है तथा मूर्ति में नर-नारी अंगों को इतनी सुन्दरता से सम्मिश्रित किया है कि दर्शक विमुग्ध हो जाता है। सत् चित् आनंद ही

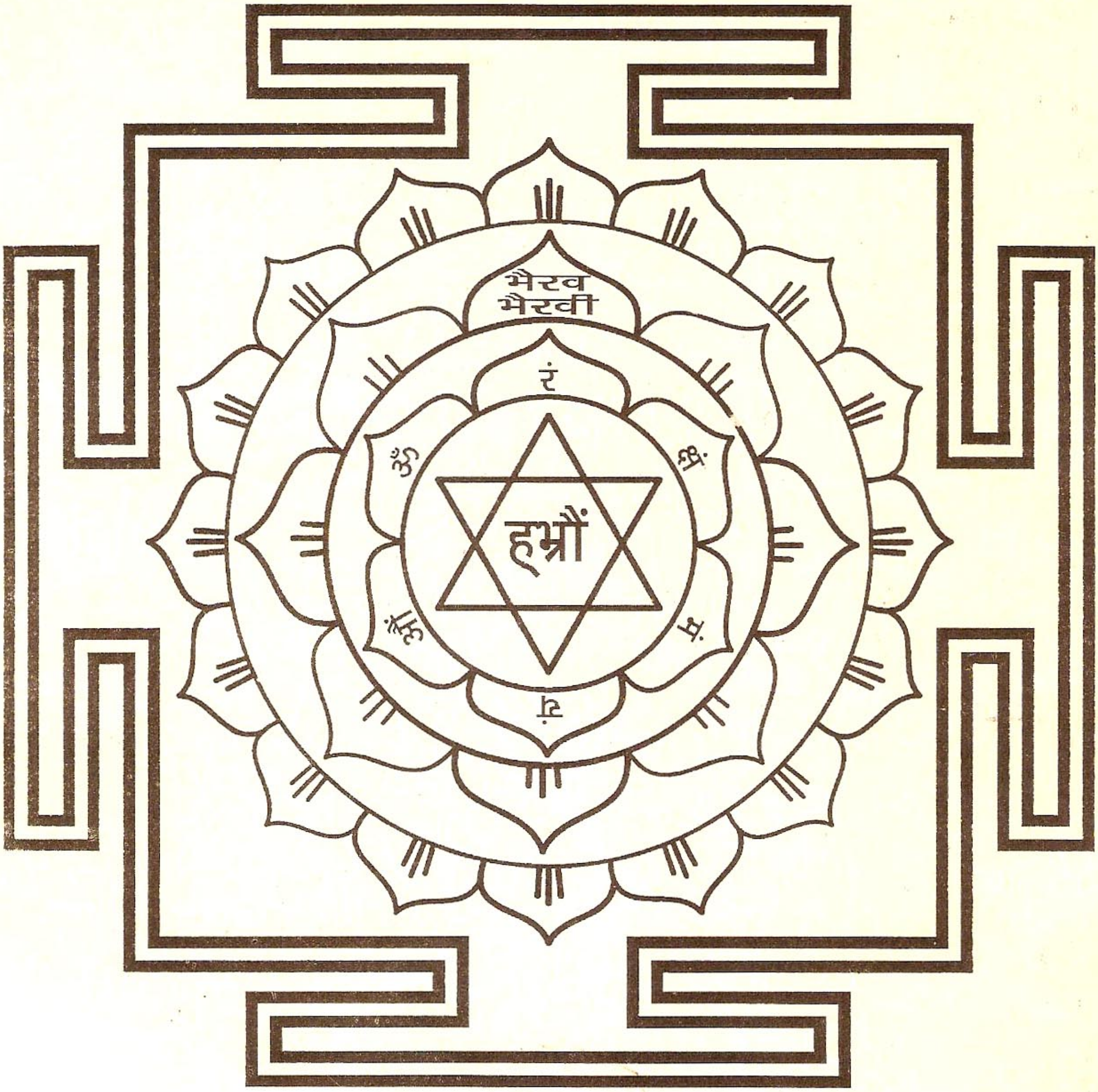

अर्धनारीश्वर यंत्र

इस यंत्र में बिन्दु, षटकोण, अष्टदल कमल, षोडशदल, कमल एवं भूपुर होता है। यंत्र को सुन्दर उत्कीर्ण करें तथा कमलों को सुन्दर निर्मित करें प्रत्येक दल एक दूसरे से सटा हुआ एवं समान होना चाहिए। षटकोण के सभी किनारे वृत को स्पर्श करें ऐसा यंत्र का निर्माण करें।

१. बिन्दु स्थिते अर्धनारीश्वर बीजेन अर्धनारीश्वर पूजितः ।

२. षटकोणेषु ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, वाणी, रमा, उमा पूजनीया ।

३. षडदले अग्नि, महाकाल, यम, वायु, सोम सदाशिव पूज्याः।

४. अष्टदलेषु स्वशक्ति सहित अष्टभैरवा पूजनीया ।

५. षोडश दले षोडशकलाः पूजनीया ।

६. भूपुरे दिकपालाः पूजनीया ।

७. भूपुरादवर्हि आयुधानि पूज्यानि ।

ईश्वर का स्वरूप कहा गया है इसमें मनुष्य के स्थूल शरीर और बाह्य चेतना सत् एवं चित् में अभिव्यक्त है तो उन दोनों की साम्यावस्था आनंद स्वरूप अर्धनारीश्वर का मैथुनिक किंवा युग्म रूप है। इसी आधार पर कौलों तथा शाक्तमलावलंबियों के पंचमकार के अंतिम प्रकार का विचार किया गया है। ईश्वर का सत्स्वरूप मातृभाव है तथा चित्स्वरूप पितृभाव है तथा तीसरा आनंदरूप वह स्वरूप है जिसमें दोनों के पूर्ण सामंजस्य की अन्तर्भावना की गई है। बाइबिल के Genesis में लिखा है कि God created man in his own image male and female evented He them. स्त्री उनका सद्रूप है तथा पुरुष चिद्रूप, परन्तु आनंद (blelis) का प्रादुर्भाव होता है, जब ये दोनों पूर्णतया मिलकर तद्रूप अभिन्न हो जाते हैं।

अब इस संदर्भ में हम पौराणिक कथानकों पर एक विहंगम दृष्टि डालें। शिव पुराण की वायवीय संहिता के चौदहवें अध्याय में आया है कि एक समय ब्रह्मा जी ने नील लोहित भगवान रूद्र से सृष्टि करने की प्रार्थना की तो उन्होंने अपने मानसिक संकल्प से अपने समान ही जटाजूट अनेक पुरुषों की सृष्टि कर डाली। जरा-मृत्यु से अस्पृश्य सभी निर्भय, नीलकंठ एवं त्रिनेत्र होने के साथ-साथ शिव-आयुध त्रिशूल-धारण कर सबों ने चौदह भुवनों को आच्छादित कर लिया। ब्रह्माजी ने भयभीत हो जरा-मृत्यु रहित रुद्रों की सृष्टि न करने की प्रार्थना की तो शिवजी ने कहा कि मेरी सृष्टि जरा-मृत्यु रहित ही हो सकती है। उन्होंने अशुभ प्रजाओं की सृष्टि करने के लिए ब्रह्माजी को ही कहा। इस पर रुद्रेश्वर भगवान शिव प्रजा के सृष्टि कर्म से निवृत्त हो गए। रुद्र संहिता के १५वें अध्याय में यही प्रसंग किंचित परिवर्तन के साथ आया कि बह्माजी ने सृष्टि निर्माण के लिए घोर तप किया तो भगवान शिव अर्धनारीश्वर के रूप में प्रकट हुए तो जन्म रहित, तेजोराशि, सर्वज्ञ एवं सर्वस्रष्टा नीललोहित भगवान शिव से ब्रह्माजी ने भांति-भांति के जीवों के सृष्टि के लिए निवेदन किया। महेश्वर रुद्र ने उनके निवेदन को अस्वीकार करते हुए कहा, 'विधाता! मैं जन्म और मृत्यु से युक्त प्राणियों की सृष्टि नहीं करूँगा। मैं तो दुःख सागर में निमज्जित उन सभी जीवों का उद्धार मात्र करूँगा, गुरु स्वरूप धारण कर उन्हें ज्ञानोपदेश दूंगा तथा उन्हें भव-सागर से पार उतारूँगा। प्रजापते! शक्तिसागर में निमग्न समस्त जीवों की सृष्टि तुम्हीं करो। मेरी आज्ञा से इस कार्य में प्रवृत होने के कारण तुम माया से मुक्त रहोगे।' ऐसा कह रुद्रेश्वर भगवान शिव अन्तर्ध्यान हो गए।

वायवीय संहिता के १५वें अध्याय में एक प्रसंग आया है कि जब ब्रह्मा रचित सृष्टि में प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तो उन्होंने मैथुनी सृष्टि करने का विचार किया। इस हेतु उन्होंने पुनः कठोर तपस्या करनी शुरू की। तब जो आद्या, अनन्ता, लोकभावनी, भावगम्या, सूक्ष्मतमा, शुद्धा, बोधस्वरूपा, निर्गुणा, निष्प्रंपचा, निष्कला, नित्या तथा सदा शिवाश्रिता भगवती पराशक्ति का महेश्वर के साथ चिन्तन करने लगे। तपोनिष्ठ पितामह पर भगवान शिव प्रसन्न होकर अपने अनिर्वचनीय अंश से किसी अद्भूत मूर्ति में आविष्ट हो गए तथा आधे शरीर से नारी और आधे शरीर से पुरुष रूप से ब्रह्माजी के समक्ष आए उन सर्वदाता, सर्वव्यापी, उपाधि रहित, शरणागत वत्सल भगवान शिव को साष्टांग दंडवत करते हुए ब्रह्मा ने निम्न स्तोत्र का पाठ किया–

जय देव महादेव जयेश्वर महेश्वर ।
जय सर्वगुण श्रेष्ठ जय सर्वसुराधिप ।।
जय प्रकृति कल्याणि जय प्रकृतिनायिके ।
जय प्रकृतिदूरे त्वं जय प्रकृति सुन्दरि ।।
जयामोघमहामाय जयामोघ मनोरथ ।
जयामोघमहालील जयामोघ महाबल ।।
जय विश्व जगन्मातजेय विश्व जगन्मयि ।
जय विश्व जगद्धात्री जय विश्व जगत्सखि ।।
जय शाश्वती वैश्वर्य जय शास्वतिकालय ।
जय शाश्वतिकाकार जय शाश्वतीकानुयुग ।।
जयात्मत्रयनिर्मात्रि जयात्मत्रयपालिनी ।
जयात्मत्रयसंहर्त्रि जयात्मत्रयनायिके ।।
जयालोकनायत्तजगत्कारणबृंहण ।
जयोपेक्षा कटाक्षांत्थतुतयुग्मुक्त भौतिक ।।
जय देवाद्यविज्ञेये स्वात्मसूक्ष्मदृशोरजबल ।
जय स्थूलात्मशक्त्येशेजयव्याप्त चराचरे ।।
जयनानैकविन्यस्तविश्वतत्वसामुच्चय ।
जयासुरशिरोनिष्ट श्रेष्ठानुगकदम्बक ।।
जयोपाश्रितसंक्षासंविधानपटीयसि ।
जयोन्मूलित संसार विषवृक्षांकूरोद्गमे ।।
जय प्रादेशिक कैश्वर्य वीर्य शौर्य विजृंभण ।

सकल भुवन भूतभावनाभ्यां जननविनाशविहीन हाम्यां ।
नश्वर युवतीवपुर धराम्यां, सततमहं प्रणतोस्मि शंकराभ्यां ।।

जय विश्ववहिर्भूत निरस्तपरवैभव ।।
जयातिघोर संसार महारोग भषग्वर ।
जयानादिमलाज्ञानतमः पटलचंद्रिके ।।
जयत्रिपुर कालाग्नेजयत्रिपुर भैरवि ।
जय त्रिगुण निर्मुक्त जयत्रिगुणमर्दिनी ।।
जय प्रथम सर्वश जय सर्वप्रबोधिके ।
जय प्रचुर दिव्यांग जय प्रार्थितदायिनी ।
जय देवते परंधाम क्वच तुच्छं नोवचः ।
तथापि भगवन् भवत्या प्रलपन्तं क्षमस्व माम् ।।
(शिव पुराण, वायवीय संहिता, पूर्वखंड : १५/१६-२१)

इस प्रकार इस स्तोत्र से रुद्र एवं देवी का एक साथ स्तवन करके चतुर्मुख ब्रह्मा ने रुद्र एवं रुद्राणी को बारंबार नमस्कार किया। ब्रह्मापाठित यह पवित्र एवं उत्तम अर्धनारीश्वर स्तोत्र शिव पार्वती के हर्ष को बढ़ाने वाला है। अर्धनारीश्वर के विग्रह का ध्यान कर जो इस स्तोत्र से शिव-पार्वती का स्तव करता है वह अपना अभीष्ट पा लेता है।

अर्धनारीश्वर यंत्र–

(१) बिन्दु में अर्धनारीश्वर बीज 'ह्म्रौं' से अर्धनारीश्वर की पूजा करें।

(२) षडकोण में पूर्वादिक्रम से ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, वाणी, रमा, उमा की पूजा करें।

(३) षडदल में बीज सहित अग्नि, महाकाल, यम, वायु, सोम तथा सदाशिव की पूजा करें।

(४) अष्टदलों में अष्टभैरव स्वशक्ति के साथ पूजनीय

(५) षोडश दलों में षोडशमातृका पूजन करें।

(६) भूपुर में दिक्पाल पूजनीय हैं।

(७) भूपुर के बाहर आयुधों की पूजा करें।

तांत्रिक साधना

अर्धनारीश्वर की तांत्रिक साधना पर संभवतः किसी भी ग्रंथ में कोई विशेष चर्चा नहीं है। मंत्र महोदधि, मंत्र महार्णव तथा तंत्रसार में भी इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है तथापि शैव एवं शाक्त महात्माओं में पराम्परागत रूप से निम्नलिखित विधि प्रचलित हैं:–

मंत्र : रं क्षं मं यं औं ॐ

इसी मंत्र को चिन्तामणि मंत्र भी कहा जाता है जिससे शिवोपासना करने से साधक को सर्वसिद्धियां प्राप्त होती हैं।

विनियोग :

अस्य अर्धनारीश्वर मंत्रस्य कश्यप ऋषिः। अनुष्टुपछंदः अर्धनारीश्वर देवता। ममाभीष्ट सिद्धयर्थ जपे विनियोगः।

मंत्रोद्धार :

अग्निः संवर्त्तकादित्यरात्रोलाः षषनिविन्दुमय्।
चिन्तामणिरिति ख्यातं बीजं सर्वस्मृद्धिदम्।।

इस मंत्रोद्धार के अनुसार अर्धनारीश्वर भगवान का सर्वसमृद्धि देने वाला चिन्तामणि नामक बीज है–ह्म्रौं।

विशेष : इसके विनियोग एवं ध्यान पूर्ववत् हैं तथा इसके अतिरिक्त इस अर्धनारीश्वर मंत्र का बीज **'रं'** शक्ति **'ॐ'** और सर्व समृद्धि के लिए इसका विनियोग जोड़कर करना चाहिए।

षडंगन्यास : **रं, कं, चं, मं, रं, यं** इन ६ अक्षरों से करने का विधान है

पुरश्चरण : एक लाख जपं, दशांश हवन- घृत, मधु-शर्करा मिश्रित तिल-तंडुल से विधिवत् पुरश्चरण करने से मंत्र सिद्ध हो जाता है तथा अर्धनारीश्वर रूप का दर्शन भी संभव हो सकता हैं।

साधना के अंत में प्रणाम करें :

सकल भुवन भूतभावनाभ्यां जननविनाशविहीन विग्रहाभ्यां।
नरवर युवतीवपुर धराम्यां, सततमहं प्रणतोस्मि शंकराभ्यां।।

जिहि सुमिरत सिधि होय...

(गणपति से संबंधित कतिपय तांत्रिक प्रयोग)

सकाम साधना के लिए तंत्र में सर्वाधिक महत्व गणपति के मंत्रो का है। वेदकाल के पूर्व से ही गणपति की उपासना पद्धतियां प्रचलित हैं तथा तंत्र की कोई ऐसी विधा नहीं है जिसमें गणपति से संबंधित मंत्र स्तुति या प्रार्थना उपलब्ध न हो चाहे वैदिक, तांत्रिक अनुष्ठान हो या फिर साबर मंत्रों की सिद्धि हो। सभी प्रकार के कर्मकांडों में गणेश की उपासना एक अनिवार्य अंग है। तभी तो **श्री गणेश** का अर्थ ही प्रारंभ होता है। श्री गणेश को पंचदेवोपासना में एक आवश्यक देवता मानकर पूजा की जाती है। बिना गणपति की आराधना के लाख प्रयत्न करने पर भी सिद्धि अशक्य है। यहां तक कि नित्य पूजा या नैमितिक पूजा में भी गणेश की उपासना का विधान आवश्यक है अन्यथा वह पूजा तप्त बीज की तरह निरर्थक हो जाती है। बिना गणपति की पूजा के साधक अपनी साधना करता है तो उसे सफलता की बात ही क्या उसकी अधोगति होती है तथा वह कुंभीपाक नरक में जा पड़ता है और असीम पीड़ा भोगता है। शुभकर्म या अशुभ अभिचारिक प्रयोग हो उसमें सफलता बिना गणपति की कृपा से संभव नहीं है। गणपति की उपासना पद्धति इतनी प्राचीन तथा विविधता पूर्ण है कि एक अलग तांत्रिक शाखा का पूर्ण विकास हो गया जिसे गाणपत्य तंत्र कहा जाता है इसके अपने संप्रदाय हैं, शाखायें हैं और पृथक-पृथक स्वतंत्र आचार पद्धतियां है विघ्नेश्वर गणपति गणाध्यक्ष हैं तथा उसके संबंध में इतनी कथायें तथा लोक कथायें प्रचलित हैं कि उन पर एक स्वतंत्र पुराण ग्रंथ की रचना तो हुई ही है साथ-ही-साथ अन्यान्य बृहद् -लघु कलेवर के इतने ग्रंथ उपलब्ध है कि एक स्वतंत्र पुस्तकालय अस्तित्व में आ सकता है। लोक कल्याण तथा अपनी व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के कारण, अपनी परम बुद्धिमता के फलस्वरूप गणाधिपति गणेश लोकतंत्र, गणतंत्र के प्रतीक रूप में स्थापित हैं तथा लोकनायकों तथा राजनेताओं के भी प्रेरणास्रोत के रूप में श्री गणेश की उपासना की सार्थकता है। श्री गणेश पुराण में त्रिपुर वध के समय भगवान शिव द्वारा गणपति के विषय में कहा गया है–

शैवेस्त्वभैदीभैरथ वैष्णवैश्च शाक्तैश्च सौरैरथ सर्वकार्ये।
शुभाशुभे लौकिके बौद्धिके चत्वमर्चनीयः प्रथमं प्रयत्नात्।।

(गणेशपुराण १/४५/६०-६६)

मृत्युकाल में भी गणेश-स्मरण लाभप्रद हैं :

यः स्मृत्वा त्यजति प्राणमन्ते मां श्रद्धयान्वितः ।

सयात्मपुनारावृत्ति प्रसादान्मम भूभुज ।।

पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ही निर्गुण एवं विघ्नविनाशक आदि गुणों से विशिष्टता प्राप्तकर गजवदनादि अवयव मूर्ति मान रूप में श्री गणेश हैं–

अं गणेशो वै ब्रह्म तदविधात् ।

यदि दं किं च सर्व भूतं भव्यं जायमान च तत सर्वमित्याचक्षते ।।

(गणेशोत्तर तापनी उपनिषद् : ३)

श्री गणपत्यथपर्वशीषोपनिषद् में श्री को ॐ स्वरूप परब्रह्म बताया गया है । गणेश की उपासना बहुविधि एवं देशान्तरीय है। इनकी उपासना समस्त भूमंडल में सार्वकालिक प्रचलित है। श्री गणेश आर्य, अनार्य, सुरासुर, यक्ष, किन्नर विभिन्न देवयोनियों में सभी वर्गों तथा आश्रमों में बिना किसी भेदभाव के किसी न किसी रूप में पूजित रहे हैं। तमिलनाडु तथा महाराष्ट्र में गणपति प्रधान देवता के रूप में आद्योपासित होने के साथ-साथ इनकी विशेष पूजा का प्रचलन है। स्वतंत्रता संग्राम में गणेश पूजा की महत्ता लोकमान्य तिलक द्वारा स्थापित की गई जो सर्वविदित है। सम्पूर्ण तमिल प्रदेश में श्री गणेश को ओंकार की साक्षात् मूर्ति मानकर सभक्ति पूजा की जाती है। वहां भक्त गणेश मूर्ति के समक्ष खड़ा होकर अपनी कनपट्टियों में मृदुल आघात करते हैं तथा दोनों हाथों से दोनों कान पकड़कर उठते-बैठते हैं। ये दोनों क्रियाएं यौगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मस्तक पर हल्का आघात करने से आज्ञाचक्र उद्वेलित होता है तथा उठने-बैठने की लगातार क्रिया से सुषुम्ना नाड़ी में उत्तेजना होने से कुंडलिनी शक्ति का उर्ध्वगमन होता है। अनेकानेक सहस्रनामावली तथा अष्टोत्तर शत नामावली की रचना भक्त-कवियों ने की है। साम्बशिव शास्त्री ने गणेश-दर्शन एवं उपासना से संबंधित अनेक पुस्तकों का प्रणयन किया जिनमें गणेशाद्वैतम, ज्ञानकांडम् , कर्मकांडम् , उपासनाकांडम् , गणेश उपनिषद् कई गाणपत्य वेदान्त की रचना संस्कृत में की गई। ओवैयर की सुप्रसिद्ध रचना 'विनायकर अकवल' एक प्रसिद्ध काव्यग्रंथ है। बंगाल में भी सिद्धिदाता के रूप में गणेश के प्रति प्रचुर भक्ति साहित्य मिलता है। वहां भाद्र सुदी चतुर्थी के अवसर पर सिद्ध विनायक की पूजा का प्रचलन है। छोटा नागपुर के मुंडाजाति में श्री गणेश की पूजा का बहुप्रचलन है। प्रत्येक कार्य के प्रारंभ में इनके द्वारा गौरी-गणेश की पूजा अनिवार्य है। जहाँ-तहाँ पर्वतीय चट्टानों पर भी गणपति की प्रतिमा उत्कीर्ण है तथा वहां के फगुआ और झूमर ग्राम्यगीतों में गणेश-वंदना के पर्याप्त संदर्भ मिलते हैं। वैसे राजस्थान, पंजाब, गुजरात आदि सभी प्रदेशों में गणपति की वैद्धिक और तांत्रिक उपासना पर्याप्त की जाती है तथापि केरल प्रदेश जिसे परशुराम क्षेत्र भी कहते हैं, गणेश जी के तांत्रिक-मांत्रिक अनुष्ठान दुख-दारिद्रय, सुख-समृद्धि तथा प्रत्येक कार्य की सफलता एवं समृद्धि के लिए किया जाता है। केरल में कोई भी शुभकार्य महागणपति के हवन से प्रारंभ किया जाता है तथा इसके लिए विशेष यंत्रों को स्थापित किया जाता हैं।

वस्तुतः श्री गणेश के प्रायः सभी मंत्र यथाविधि अनुष्ठित होने पर सद्य फलदायी होने के कारण अत्यंत प्रभावपूर्ण हैं तथा ये साधनायें सहज तथा सरल भी हैं। कतिपय सिद्ध मंत्रों का विधि-विधान सहित अनुष्ठानों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है– श्री गणेश की उपासना में तीन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए अन्यथा अनुष्ठान का प्रभाव न्यून या निष्फल हो सकता है। उनकी पूजन सामग्री में दुर्वा, सिन्दूर, दधि, लड्डू, लाल पुष्प आवश्यक हैं। विभिन्न फलों का प्राप्ति के लिए गणपति का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए–

पीतं स्मरेत् स्तंभनकार्य एनं वश्याय मंत्री हिअरुणं स्मरेत् तम् ।

कृष्णं स्मरेन्मारणकर्मणीशमुच्चाटनं धूमनिभं स्मरेत् तम् ।।

बंधूक पुष्पादिनिम च कृष्टौ स्मरेद् बलार्थ किलपुष्टिकार्ये ।

स्मरेत्धनार्थो हरिवर्णमेतं मुक्तौच शुक्लं मनुति स्मरेत् तम् ।।

एवं प्रकारेण गणं त्रिकालं ध्यायंजपन् सिद्धियुतो मनेतसः ।

स्तंभन-पीला; वशीकरण-अरूण; मारण-हरा; उच्चाटन-धूम्र; आकर्षण-बंधूक (दुपहरिया के फूल) पुष्प की तरह लाल; धनार्थी-हरितवर्ण तथा मोक्षकामी-शुक्लवर्ण। तुलसीपत्र से श्री गणेश के किसी विग्रह की पूजा सर्वथा वर्जित है। विविध गणपतियों के नाम एवं स्वरूप के विषय में जानकारी के लिए कर्णाटक के महाराज मुन्नदि कृष्णराज ओरयर लिखित 'श्री तत्व निधि' पुस्तक देखनी चाहिए। पंचायतन पूजा में श्री सूर्य के बाद श्री गणेश, श्री दुर्गा, श्री शिव तथा श्री विष्णु की पूजा का विधान है–

(१) ***हरिद्रागणपति मंत्र*** **:** आचमन संकल्प करने के पश्चात इस प्रकार विनियोग करें।

विनियोगः

अस्य श्री हरिद्रागणपति मंत्रस्य मदन ऋषिः ।

अनुष्टुपछन्दः हरिद्रागणपति देवता

मयाभिष्ट (कामना कोई हो तो बोलें) सिद्धयर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास :

ॐ मदन ऋषये नमः शिरसि ।

ॐ अनुष्टुप छंदसे नमः मुखे

ॐ हरिद्रागणपति देवतायै नमः हृदये ।

करन्यास :

ॐ हुं गं ग्लौं अंगुष्ठाभ्यां नमः ।

ॐ हरिद्रागणपतये तर्जनीभ्यां नमः ।

ॐ वर वरद मध्यमाभ्यां नमः ।

ॐ सर्वजन हृदयं अनामिकाभ्यां नमः ।

ॐ स्तंभय स्तंभय कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

ॐ स्वाहा करतल पृष्ठाभ्यां नमः ।

हृयादिन्यास :

ॐ हुं गं ग्लौं हृदयाय नमः ।

ॐ हरिद्रागणपतये शिरसे स्वाहा ।

ॐ वर वरद शिखायैवषट् ।

ॐ सर्वजन हृदयाय कवचाय हुं ।

ॐ स्तंभय स्तंभय नेत्र त्रयाय वौषट् ।

ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

ध्यान :

पाशांकुशौ मोदकमेकदन्तं करैर्दधान कनकासनस्थम।
हरिद्रा खंडप्रतिमं त्रिनेत्रम् पीतां शुकं रात्रिगणेश मीडे ।।

(हरिद्राखंड की पीत प्रतिमा जिनके चारों हाथों में क्रमशः पाश, अंकुश, मोदक तथा एकदंत धारण किए हुए हों, स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान हरिद्रागणपति का ध्यान करें। साधक भी पूजा में पीला आसन, पीलावस्त्र, हरिद्रामाला, पीला फूल तथा पीला नैवेद्य ही रखे,)

मानस पूजा :

लं पृथ्व्यात्मकं गंधं समर्पयामि ।

हं आकाशात्मकं पुष्पं सर्मयामि ।

यं वायव्यात्मकं धूपं आघ्रापयामि ।

रं तैजसात्मकं दीपं दर्शयामि ।

वं अमृतात्मकं नैवेद्यं सर्मयामि ।

सं सर्वात्मकं ध्यान पुष्पं समर्पयामि ।

मंत्र : ***ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वरवरद सर्वजन हृदयं स्तंभय स्तंभय स्वाहा ।***

इस मंत्र का चार लाख जप करने से यह सिद्ध हो जाता है। यंत्र पूजन के पश्चात (आवरण पूजा) हल्दी युक्त चावल से चालीस हजार आहूतियां दें। यथाशक्ति, ब्राह्मण भोजन करायें। जप समर्पण करें

गुह्याति गुह्य गोप्त्रीत्वं गृहाण अस्मद् कृतं जपं
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् विघ्नेश्वरः ।।

प्रयोग :

शुक्लपक्ष की चतुर्थी को कुमारी कन्या से हल्दी पिसवाकर स्नान करें और हरिद्रागणपति का पूजन कर मंत्र का एक हजार आठ बार तर्पण करें। गणपति के समक्ष एक हजार आठ बार जाप करें तथा हरिद्रा रंजित चावल की एक सौ आठ आहूतियां दें।

इस विधि से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। विवाहकामी पुरुष या कन्या लावा (खील) की आहूति दें तो शीघ्र उत्तम विवाह होता है। पुत्र की कामना करने वाली स्त्री ऋतु स्नान से शुद्ध होकर उस दिन श्रद्धा-पूर्वक हरिद्रागणपति का पूजन कर सेंधा नमक, वच, हल्दी इन वस्तुओं को अल्प मात्रा में पिसवाकर गोमूत्र के साथ औषध को देखती हुई तथा स्पर्श करती हुई एक हजार बार मंत्र का जप करने से यह औषधि सिद्ध हो जाती है। फिर कन्याओं और ब्रह्मचारियों को भोजन कराकर इस औषधि का सेवन कर ले तो निश्चय ही उसकी कामना पूर्ण होगी।

इसका प्रयोग वाद-विवाद, युद्ध तथा स्तंभन में करना चाहिए। इससे जल, अग्नि, वन्यपशु, चोर तथा अस्त्रों का स्तंभन हो जाता है। बगलामुखी-उपासना में इसका एक माला जप लेने से बगलासिद्धि निस्संदेह होती है। फिर, हरिद्रागणेश का कवच-पाठ करें तदुपरान्त सहस्र नामावली अष्टोत्तरशत नामावली का पाठ कर प्रार्थना करें।

(२) उच्छिष्टगणपति :

विनियोगः

अस्य श्री उच्छिष्ट गणपति मंत्रस्य कंकोल ऋषि, विराटछन्द, उच्छिष्टगणपति देवता अखिलाप्तये जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः

ॐ कं कंकोल ऋषये नमः शिरसि ।

ॐ विराट् छंदसे नमः मुखे ।

ॐ उच्छिष्टगणपति देवतायै नमः हृदये ।

हृदयादिन्यास :

ॐ हस्ति हृदयाय नमः ।
ॐ पिशाचि शिरसि स्वाहा ।
ॐ लिखे शिखायैवषट् ।
ॐ स्वाहा कवचाय हुं ।
ॐ हस्ति पिशाचि लिखे नेत्र त्रयाय वौषट्।
ॐ हस्ति पिशाचि लिखे स्वाहा अस्त्राय फट्।

ध्यान :

चतुर्भुजं रक्त तनुं त्रिनेत्रं पाशांकुशौ मोदकपात्र दन्तौ,
करैर्दधानं सरसीहए हस्थमुन्मत्तं उच्छिष्ट गणेश मीडे ।।

मानस पूजा :

लं पृथ्व्यात्मकं गंधं समर्पयामि ।
हं आकाशात्मकं पुष्पं सर्मयामि ।
यं वायव्यात्मकं धूपं आघ्रापयामि ।
रं तैजसात्मकं दीपं दर्शयामि ।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं सर्मयामि ।
सं सर्वात्मकं मंत्र पुष्पं समर्पयामि ।

मंत्र :

ॐ हस्ति पिशाचिलिखे स्वाहा ।

इस मंत्र का एक लाख जप कर दशांश तिल, घृत से हवन करें, दशांश तर्पण तथा दशांश मार्जन करें। फिर दशांश ब्राह्मण भोजन करायें। इस प्रकार सिद्ध मंत्र से अपने अंगूठे के आकार की एक चंदन या श्वेतार्क की प्रतिमा बनाकर प्राण प्रतिष्ठा कर प्रतिदिन मधु से स्नान कराकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी से प्रारंभ कर शुल्क चतुर्दशी तक गुड़ तथा खीर नैवेद्य चढ़ाकर एक-एक हजार मंत्र जपें तथा घृततिल की आहूति दें। नैवेद्य खाकर उच्छिष्ठ मुख जप करते रहें। इससे एक पक्ष में राज्यैश्वर्य की प्राप्ति। कुम्हार की चाक की मिट्टी की प्रतिमा का पूजन करने से सुराम्य प्राप्ति होती है। वाल्मीक मृत्तिका से अभीष्ट धन लाभ। गुड़ से सौभाग्य, नमक से शत्रुविनाश। नींबू से भी शत्रुनाश। कटुतैल से राजीपुष्प से हवन करने से शत्रुओं का विद्वेषण। जुआ, विवाद, युद्ध में विजय। कुबेर उच्छिष्ट गणपति की आराधना कर निधिपति बने, विभीषण को राज्य मिला। लाल वस्त्र धारण कर अंग राग से युक्त रात्रि में तांबूल भक्षणकर जपें या गणपति को नैवेद्य चढ़ाकर उनका भक्षण करते हुए जपें। फलादि से बलि प्रदान करें :-

ॐ गं हं क्रौं ग्लौं उच्छिष्ट गणेशाय महायक्षाय अयं बलिः ।

(३) त्रैलोक्यमोह्यगणपति :

ॐ वक्रतुण्डैकदंष्ट्राय क्ली हीं श्री गं गणपते
वरवरद सर्वजनंमे वशमानय स्वाहा ।

विनियोग :

अस्य त्रैलोक्य मोहन गणेश मंत्रस्य गणक ऋषिः ।
गायत्री छंदः, त्रैलोक्य मोहन करा गणेशो देवता ।
ममाभिष्टसिद्ध्यर्थेजपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास :

ॐ गणक ऋषये नमः शिरसि ।
ॐ गायत्री छन्दसे नमः मुखे ।
ॐ त्रैलोक्य मोहन गणेशो देवतायै नमः हृदि ।

हृदयादिन्यास :

ॐ वन्क्रतुंडैकन्दंष्ट्राय क्लीं हीं श्री गं हृदयाय नमः ।
ॐ गणपतये शिरसे स्वाहा ।
ॐ वरवरद शिखायैवषट् ।
ॐ सर्वजन कवचाय हुं ।
ॐ मे वशमानय नेत्र त्रयाय वौषट् ।
ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

ध्यान :

गदीबीजपूरे धनुः मूलचक्रे सरोजात्पले पाशधान्यैकदन्तान् ।
करैः संदधानं स्वशुंजडग्रराजन् कुंभ मंक्याधिरूढं स्वपन्न्या ।
सरोजन्मना भूषणानां भेरेणोज्ज्वलत् हस्त तन्व्यासयान्धिगिलांगम् ।
करीन्द्रानन चन्द्रचूंडं त्रिनेत्रं जगन्मोहनं रक्त कान्तिम भजेतम् ।

मानसपूजनोपरान्त मंत्र का चार लाख जप करें। अष्टद्रव्य से दशांश हवन कर, पूजा कर आवरण पूजा करें। फिर अभीष्ट सिद्धि के लिए कमल को प्रयोग करें। कमलपुष्प से हवन करने से राजा तथा कुमुद पुष्प से मंत्री वश में होता है। पीपल की, उदुम्बर की, पलाश की तथा वट की समिधाओं से हवन करने पर क्रमशः ब्राह्मण, राजा, वैश्य एवं शूद्र का वशीकरण होता है। क्षौद्र के हवन से स्वर्ण-प्राप्ति तथा गोदुग्ध के हवन से गौएं मिलती है। दही मिश्रित चरु के हवन से ऋद्धि। घी की आहुति से अन्न एवं लक्ष्मी की वृद्धि। वेतस की आहुतियों से उष्टि एवं सुभिक्ष होता है।

श्री गणेश के सरल अनुष्ठान :

उच्छिष्ट गणपति में मंत्र को भोजन के प्रत्येक कौर के साथ जपने से तथा जल पीने एवं मुख प्रक्षालन तक मौन रहकर जपने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। यह सिद्ध

प्रयोग है । इसमें यह भावना रखकर कि मैं गणेश हूँ, भोजन करें । श्री गणेश का सर्व साधारण श्रेष्ठ मंत्र है :

ॐ गं गणपतये नमः ।

इस मंत्र से गणपति का सामान्य ध्यान तथा मानस पूजन करें । ३१ माला प्रतिदिन जप करने से अभीष्ट सिद्धि मिलती है । विवाह, धनप्राप्ति वाद-विवाद मुकदमे, जुआं आदि में विजय, ऋद्धि-सिद्धि समृद्धि की प्राप्ति अनायास हो जाती है। जिस अभीष्ट के लिए संकल्प कर इस मंत्र का जप किया जाएगा वह तत्काल प्राप्त हो सकेगा ।

यदि कहीं किसी कार्य से यात्रा पर जाना हो तो इस मंत्र का पाठ करते हुए सात बार में सात गांठ कच्चे सूते पर लगाकर उसे दाहिनी ओर स्थापित कर यात्रा पर जायें तो अभीष्ट सिद्ध होगी । इस मंत्र से अभीष्ट सिद्धि तक या अनुष्ठान काल तक प्याज, लहसुन, अंडे आदि का परित्याग कर शुद्ध निरामिष भोजन करें तथा ब्रह्मचर्य पूर्वक रहें ।

गणेश का ऋण हर स्तोत्र का या गणपति अथर्वनीष का प्रतिदिन २१ बार पाठकर इस मंत्र का दस माला जपकर एक माला हवन कर व्यक्ति शीघ्र ही कुबेर (१ वर्ष में) के तुल्य सम्पति एवं ऐश्वर्य से पूर्ण हो जाता है ।

मंत्र :

ॐ गणेश ऋणंछिन्धि वरेण्यं हुं नमः फट् ।

श्री गणेश की मानसपूजा कर जप करना श्रेयस्कर है। ऊपर के सारे मंत्र अनुभूत हैं अतएव अभीष्ट सिद्धि के लिए इनका प्रयोग किया जा सकता है । प्रातः उठते ही जमीन पद पैर रखने के पूर्व २१ बार इस मंत्र का स्मरण करने से सारा दिन अच्छी तरह बीतेगा, दिन भर की बाधायें दूर होंगी । *(विशेष अध्ययन के लिए हमारे प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तक **'गाणपत्य तंत्र की भूमिका'** उपलब्ध है मूल्य रु २००/-)*

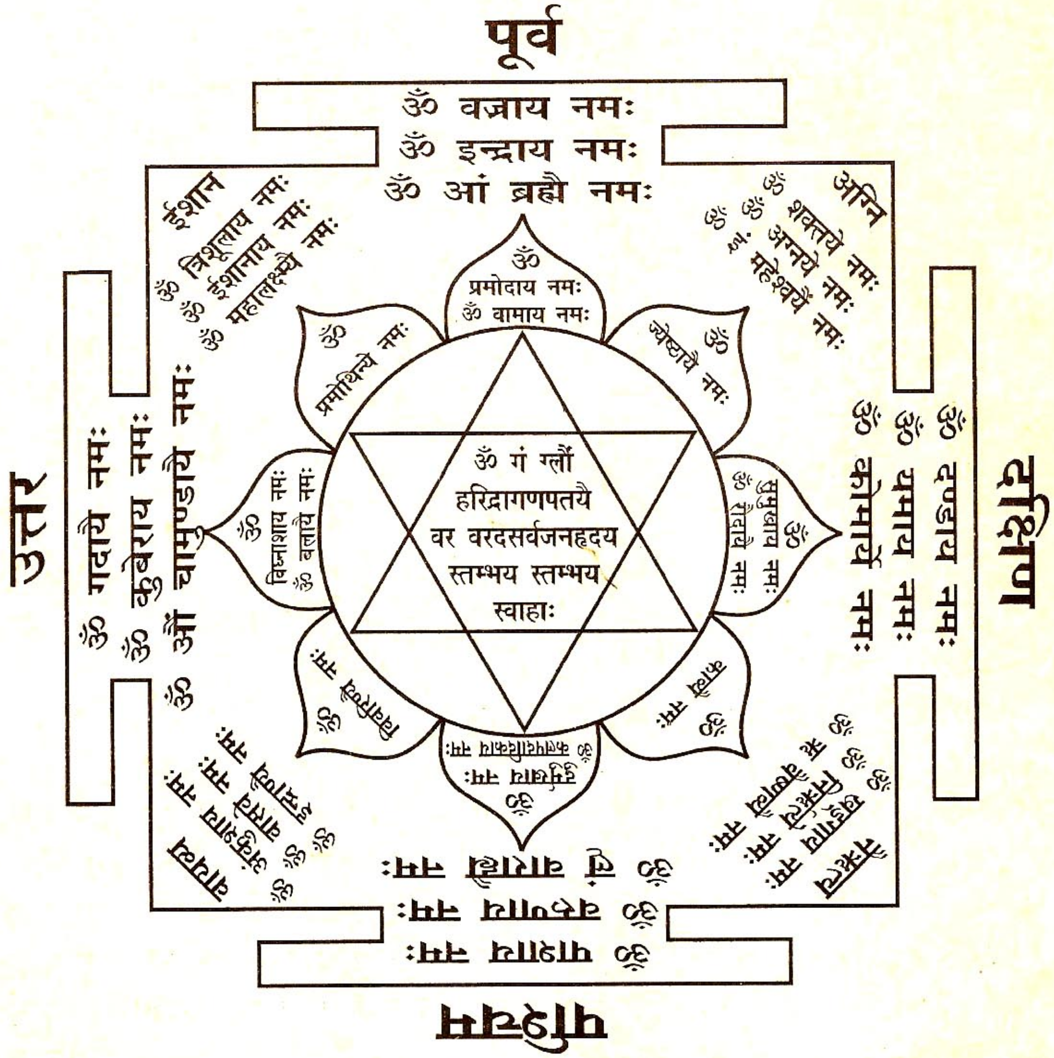

(गणपति यंत्र)

वेदों में शक्ति-तत्व

वेदों में शक्ति, साधना एवं शक्ति उपासना के अनेकानेक महत्वपूर्ण सूत्र मिलते हैं जिनकी गवेषणा से स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि शक्तिमान से शक्ति की अभिन्नता मूलरूपेण स्वीकार्य है । परमब्रह्म पराशक्ति नित्य एक दूसरे से अभिन्न होकर त्रिधारूप में विद्यमान हैं । सृष्टि, स्थिति एवं संहार के इस लीला वैचित्र्य में ब्रह्म एवं उनकी शक्ति, सर्वदा अविछिन्न हैं । यह पृथकरूपेण विचारणीय हैं कि इस लीला में किसका कितना अंश है किंवा इस ब्रह्म विलास रूपी जगत् में किसकी भूमिका न्यूनाधिक है । हमारा प्रतिपाद्य विषय है कि वेदों में शक्ति तत्व की मीमांसा का स्वरूप एवं परिणति किस रूप में की गई है। वेदों में ब्रह्म निरूपण की तरह शक्ति निरूपण का तत्व भी समान रूप से आया है । सगुण-निर्गुण दोनों ही रूपों में शक्ति-निरूपण के पर्याप्त दर्शन वेदों में होते है । यह उभयात्मक शक्ति है सगुण भी, निर्गुण भी और अनिर्वचनीय भी । भगवती पराम्बा स्वयं कहती हैं-

अहं ब्रह्म स्वरूपिणी ।
मतः प्रकृति पुरुषात्मक जगत् ।
शून्य चा शून्यं च...

(ऋग्वेद २०१०/२४)

दार्शनिक दृष्टि से प्रणव एवं मायाबीज **ह्रीं** एक ही हैं जैसाकि **ह्रीं** को शान्त प्रणव कहा गया है । स्थूल जगत् के चैतन्य को वैश्वानर अर्थात् समस्त वाङ्मय प्राणियों के स्थूल है। समस्त वाङ्मय, चारों वेद, अठारह पुराण, सताईस स्मृतियां, छह दर्शन मात्र इसी प्रथम मात्रा 'अकार' में समाहित हैं–अकारो वै सर्वावाक् । स्वप्न में भी चैतन्य तैजस् चैतन्य कहलाता है अर्थात् स्वप्नावस्था में मात्र वासनात्म उपभोग होता है वह तैजस चैतन्य ही प्रणव की दूसरी मात्रा 'उ' कार है । सुषुप्ति- प्रपंच का चैतन्य प्राज्ञ है जो गहन निद्रा के आनंद का उपभोग तथा अनुभव करता है । यही प्राज्ञ चेतना प्रणव की तृतीय मात्रा 'म'कार है । फिर अदृश्य-अव्यवहार्य-अग्राह्य अलक्षण अचिन्त्य होने के फलस्वरूप सभी मात्राओं से परे जो तुर्यातीत चैतन्य किंवा महाचैतन्य, चिद्शक्ति है वही शिव प्रणव है । **'ह्रीं'** कार में जो स्थूल देह है वह **'ह'** कार है, **'र'** कार सूक्ष्म देह तथा **'ई'** कार कारण शरीर है । 'ह' कार ही प्रापंन्चिक जगत् है, **'र'** कार तैजस तथा 'ई' कार प्राज्ञ है। कहा गया है

ममः प्रणवरूपायै नमो ह्रीं कार मूर्त्तये ।
हकारः स्थूल देहः रकारः सूक्ष्म देहकः ।
ईकारः कारणा त्यासौ ह्रीं कारश्च-तुरीयकम् ।।

इस प्रकार **'ह्रीं'** कार भी ओंकार की तरह ब्रह्म है तथा वेदानुरूप ब्रह्मवाची प्रत्यय है । ब्रह्म एवं उनकी ब्राह्मी शक्ति में वैयाकरणिक शब्द भेद है वाच्यार्थ एक ही है ।

दिव्यभाव की परिणति ही शाक्त साधना का चरम विकास है । द्वैत भाव का सर्वथा अभाव ही दिव्यभाव की आरूढ़ भूमि है । सर्वदेवमयी परब्रह्म स्वरूपिणी महाशक्ति का साक्षात्कार दशमहाविद्या की साधना में निष्पन्न होता है, वेद संहिताओं में अदिति, शची, उषा, पृथ्वी, वाक् , सरस्वती, रात्रि, धिषणा, इला, सिमीवाली, मही, भारती, अरण्चानी, निऋरति, मेधा, पृश्नि, सरण्यू, राका, सीता, श्री आदि देवियों का अभिधान किया गया है । ब्राह्मण, अरण्यक एवं उपनिषदों में अम्बिका, इन्द्राणि, रूद्राणि, शर्वाणि, भवानी, कात्यायनी, कन्याकुमारी, उमा, हेमवती आदि देवियों की चर्चा आई है किन्तु स्वतंत्र रूपेण तथा मातृप्रधान शक्ति आदिति ही हैं । ऋग्वेद में इनका नाम ८० बार आया है, अखंडित, निर्बन्ध, सर्वव्यापी, द्यौरन्तरिक्षरूपा अदिति शक्ति का मातृशक्ति, आद्या का स्वरूप चिन्तन ज्योति स्वरूपा के रूप में हुआ है–

अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्न्माता सपिता सपुत्र ।
विश्वेदेवा अदितिः पंच जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।।

(ऋक् ६१८/६०)

रात्रि सूक्त एवं देवी सूक्त में वर्णित महाशक्ति की भावमयी मूर्ति का स्पष्ट निर्देश प्राप्त है। अद्वैत स्वरूप ही चिन्मयी भाव मूर्ति का मूलाधार है। इन सर्वेश्वरी महाशक्ति का साक्षात्कार वैदिक ऋषियों ने परब्रह्म के रूप में किया है। द्यौ और अन्तरिक्ष को चैतन्य का अपर पर्याय मानकर अदिति को चिन्स्वरूपिणी बताया गया है। ऋग्वेद में वशिष्ठ ने मित्र और वरूण के साथ अदिति का आह्वान किया है तथा इन्हें ज्योतिर्मयी अप्रतिहता कहा है–

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत् क्षितिं स्ववर्तीम्... ।

(ऋ० १/१३६/२)

अदिति शब्द की व्युत्पत्ति में ही ब्रह्म स्वरूपा स्थिति कारिणी, एवं संहतिकारिणी का अनुसंधान हो जाता है। अदिति ही रूद्र की माता, वसुओं की दुहिता, आदित्यों की भगिनी, अमृत का आवास ज्योतिष्मती है :

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानामृतस्य नाभिः।
प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मा गमनागाम दितिं वधिष्ट।।

(ऋ० ८/१०१/१५)

यद्यपि सायणाचार्य ने इसे गोमाता की स्तुति के रूप में व्यंजित किया है तथापि देवी अदिति देश कालातीत विम्बोतीर्णा चिदान्दमयी सत्यसंघ ऋषि हृदय में उन्मेषित शाक्त अद्वैत दर्शन का संकेत हैं। ऋग्वेद में इन्हें दक्ष की कन्या ... जल से भू, भू से दिशायें और अदिति ने दक्ष का जनन किया। अतः वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं–

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुवः आशा अजायन्त ।
अदितेर्दक्षो अजायत दसाद्वदितिः परिर ।।

(ऋ० १०/७२/४)

आदितिर्हयजनिष्ठ दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त मद्रा अमृत बंधवः ।।

(ऋ० १०/७२/५)

यह दक्ष-दुहिता की मातृ स्वरूपा अदिति दक्ष और रुद्र की मातृरूप में निर्दिष्ट होने के फलस्वरूप मातृदेवता के रूप में अधिष्ठित हैं। समस्त बिम्ब को जो श्रेष्ठतम संदेश दिया जा सकता है कि परब्रह्म मातृस्वरूप हैं वेदों ने विश्व को दिया। नारी को मातृस्वरूपा परब्रह्म के रूप में अभिव्यंजित कर विश्व की समस्त संस्कृतियों की जो श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति संभव है वह है–

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाम सुन्वते।
अहं राष्ट्रसंगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
अहं सुवे पितरमुस्य मूर्धन मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
य एवंवेद । सदैवी संपदमाप्नोति ।

(ऋ० १०/१२५/६)

"... मैं सम्पूर्ण जगत की ईश्वरी, उपासको को धन देने वाली, ब्रह्मरूप और यज्ञार्हों में (यज्ञीय देवों में) मुख्य हूँ। मैं आकाशादि आत्मस्वरूप की निर्मात्री हूँ। मेरा स्थान आत्मस्वरूप धारण करने वाली बुद्धिवृत्ति में है"। इस प्रकार जाननेवाले देवी सम्पदा प्राप्त करते हैं। परम करूणामयी मां के स्वरूप का जो वर्णन इस ऋचा में मिलता है, वह भारतीय संस्कृति की अद्वितीयता का उदाहरण है। ममतायमी मातृस्वरूपा पराम्बा की युक्ति है कि जिस प्रकार वायु के संचरण हेतु किसी की सहायता अपेक्षित नहीं है उसी प्रकार सृष्टि की रचना में उनकी प्रवृत्ति बिना किसी प्रेरणा के है–

अहमेव वात इव प्रारभ्यमाणा भुवनानि विश्वा ।

(ऋ० १०/१२५/८)

समस्त प्राणियों पर उनकी ममता है तथा इस हेतु मायामय विग्रह धारण कर अपनी संततियों का स्पर्श कर स्नेहाप्लावित करती रहती हैं। इतना ही नहीं, माता के स्नेहिल स्पर्श से स्वर्गस्थ देवगण भी धन्य होते रहते हैं–

ततो दितिष्ठे भुवनानु विश्वोतामं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।

(ऋ० १०/१२५)

इन दिव्य संतानों का वर्णन इस प्रकार आया है–

सैपाष्टौ वसवः । सैषैकादशरुद्राः । सैषा द्वादशादित्याः । सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च । सैषा यातुधाना असुरारक्षासि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। । सैषा सत्वरजतमांसि । सैषा ब्रह्म विष्णु रुद्ररूपिणी । सैषाप्रजापति न्द्रमनवः । सैषा ग्रहनक्षत्र ज्योतिंषी । कलाकाष्टादि काल रूपिणी ।

इस प्रकार समस्त सृष्टि जो कुछ चराचर रूप में विद्यमान है वे मातृस्वरूपा ब्रह्म के स्नेह स्पर्श से आहलादित है और भिन्न-भिन्न स्थानों पर जो कुछ भी कार्य इनके द्वारा किया जाता है वे सब ब्रह्मर्पण हेतु उनके निमित्त ही किए जाते हैं–

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा

(ऋ० १०/१२५/३)

इन सभी के भरण-पोषण का दायित्व माता है तथा माता सदैव अहर्निश उनके साथ उनके कार्य कलापों का साक्षी स्वरुपा होकर उनके साथ चलती रहती है–

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत मिम्षदेवैः ।
अहं मित्रावरूणोमादियर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमिश्वनोमा ।।
अहं सोममाहनसं विमर्म्य हं त्वष्टारं उत् पूषणं भगम् ।

भगवती सबको धारण भी करती है और पोषण भी करती है ।

मया सो अन्नमति यो विपश्यति यः प्रणितिच ई श्रृगोत्युक्तम् ।
(ऋक्0 १०/१२५/४)

कतिपय दुर्दान्त दानवों से सृष्टि के रक्षार्थ तथा उन असुरों के उद्धार हेतु उन्हें स्वयं संग्राम में उतरना पड़ता है–

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरषो हन्तवानुं ।
(ऋक्0 १०/१२५/६)

अहं जनाय समदं कृणोमि ।
(ऋक्0 १०/१२५/६)

समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त पराशक्ति उससे पृथक भी है अर्थात् जगत् में स्थित होकर भी उसके बाहर भी हैं । वे द्वैत, अद्वैत, तथा द्वैताद्वैत अभिन्न भी है । देवी भागवत में स्पष्ट लिखा है कि **यथाऽत्मा तथा शक्तिर्य लाग्नौदाहिका स्थिता** *(देवी0 भा0 ६/१/१७)* शक्ति तथा शक्त्याश्रय में अभिन्नता है–शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद व्यतिरेकेनवांछति । सभी सामान्य और विशेष शक्तियां एक ही अधिष्ठान में रहकर एक रूप के कारण एक ही है । आचार्य शंकर ने शाक्त्याश्रय को प्रधानता देकर 'ब्रह्मसूत्र' का भाष्य लिखा तो शक्ति को प्रधानता देकर 'परमार्थ सार' लिखा । गुह्यवात्युपनिषद् में शक्ति प्रधान है तो श्वेताश्वतरोपमिषद् में ब्रह्म प्रधान है । दोनों में अद्वैत भाव है । ब्रह्म अद्वैत नहीं है और द्वैत की परिकल्पना तो उपासक की निजी रूचि के अनुरूप होती है ।

उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ।

वह ब्रह्म है बड़ा ही निरूपाधि-न पुरुष, न स्त्री और न नपुंसक ही न उसमें स्त्रीत्व, पुंसत्व और उभयत्व भी है और तीनों में कुछ भी नहीं है शक्ति ही नहीं, ब्रह्म भी अनिर्वचनीय है तभी तो कहा गया है–

अहं ब्रह्म स्वरूपिणी ।
मतः प्रकृति पुरुषात्मकं जगत् शून्यं चा शून्यं च ।।
अहंमानन्दानान्दौ । अहं विज्ञानाविज्ञाने ।
अहं ब्रह्मब्रह्माणी वेदिव्ये ।
अहं पंचभूतान्यपंचभूतानि अहं अखिलं जगत् ।
वेदोऽहमवेदोऽहम् विद्याहम्विद्याहम् ।
अनाहमनजाहम् । अद्यश्चोर्हूवं चतिर्यकन्चाहम् ।

इस ब्रह्मस्वरूप का प्रतिपाद्य पराशक्ति की विशेष विवेचना ऋग्वेद, यर्जुवेद और अथर्व वेद में बहुतायत से मिलता है ।

'ओं' कार के समान ही **'ह्रीं'** कार व्यापक अर्थों से भरा हुआ है । इच्छा ज्ञान, क्रियाधार, अद्वैत, अखंड, सच्चिदानंद समरसीभूत शक्ति-शिवैक्य से यह परिपूर्ण है ।

वियदीकार संयुक्तं वीतिहोत्र समन्वितम् ।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थ साधकम् ।।
एवमंकाक्षर ब्रह्म ....
(ऋक्0 १०/१२५/७)

पुनश्च,

कामोयोनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्दुः ।
पुनर्गुहा सकला माययाच पुरुच्यैषा विश्व मातादिविद्योम ।।

इस प्रकार शिवशक्त्यभेद रूपा, ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका, सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी रूपा, अशुद्धमिश्र, शुद्धोपासनात्मिका, समरीभूत शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूप का निर्विकल्प ज्ञान प्रदायी सर्वतत्वात्मिका द्वयाद्वय रूपिणी पराशक्ति की उपासना वेदों में बहुत स्पष्ट रूप से अनेकानेक संदर्भों में दृष्टिगोचर होतीअ है ।

रामचरित मानस के तांत्रिक प्रयोग

'रामचरित मानस' का अध्ययन किसी भी दृष्टिकोण से किया जाए, इसकी सर्वश्रेष्ठता ही सिद्ध होगी। इसका साहित्यिक सौष्ठव, इसकी सांस्कृतिक गरिमा तथा सामाजिक चेतना का वैशिष्ट्य इतना विस्तृत है कि आसेतु हिमाचल यह धर्म ग्रंथ के रूप में सर्वमान्य है तथा विदेशों में भी कतिपय महत्वपूर्ण महाकाव्यों में इसकी परिगणना होती है। जीवन की जिस समग्रता के परिप्रेक्ष्य में इसका दर्शन एवं समाधान है। ऐसी कोई भी समस्या नहीं जिसका समाधान इस ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है तभी तो स्वयं महाकवि तुलसीदास ने इसके संबंध में प्रारंभ में ही कहा है– नानापुराणनिगमागम ..... ।

वेद, तंत्र तथा षड्शास्त्रों तथा कुछ अन्यत्र से भी ज्ञान के जो स्रोत हैं उन्हें रामचरितमानस में पिरो दिया गया है। रामचरित मानस की यही विशिष्टता इसे अन्यान्य धर्मग्रंथों से विशिष्ट बना देती है। इसका एक पक्ष और भी है और वह है इसका तांत्रिक पक्ष। इसका तांत्रिक पक्ष भी इतना सुदृढ़ एवं प्रामाणिक है कि श्री राम भक्तों में इसके अनुष्ठान का बहुप्रचलन है। कठिन से कठिन समस्याओं का निराकरण भी इसके तांत्रिक अनुष्ठान से शीघ्रातिशीघ्र हो जाता है। इसका अनुष्ठान सद्यः फलदायी तथा सहज-सरल है। जहां तांत्रिक अनुष्ठान में व्यय तथाश्रम दोनों की कोई सीमा नहीं वहीं मानस के तांत्रिक अनुष्ठान में ना कोई आडम्बर और ना ही कोई व्यय। थोड़े खर्च तथा थोड़ा श्रम और आपका अभीष्ट पूर्ण हो जाता है। रामचरित मानस का एक-एक दोहा और एक-एक चौपाई महामंत्र है तथा कलयुग में इसका अनुष्ठान अव्यर्थ है यदि चंद नियमों का पालन करते हुए बिधि-विधान पूर्वक किया जाए। सासांरिक सुख-समृद्धि के अतिरिक्त मोक्ष तक प्रदान करने की शक्ति इन दोहा -चौपाइयों में है। मनोवांछित फल प्राप्ति के साथ ही साथ इसके अनुष्ठान से धार्मिक चेतना का विकास इस हद तक संभव है कि वह आध्यात्म के शिखर स्पर्श करने लगे। इसकी उपासना से आत्मिक शक्ति के विकास के साथ ही साथ धर्म, साहित्य, नीति एवं अध्यात्म का परिपूर्ण ज्ञान भी हो जाएगा। इससे उपासक का सामाजिक, पारिवारिक और नैतिक उत्कर्ष तो होगा ही साथ ही साथ भक्ति की अविरल धारा से आत्मा संतृप्त रहेगी तथा चतुर्दिक अभ्युदय होगा। आज इस घोर नैतिक पतन के युग में यदि कोई अवलम्ब है तो यह रामचरित मानस ही है जो मनुष्य को घोर अंधकार में पथ-प्रदीप का काम करेगा तथा समाज को उन्नयन की दिशा देगा और हम मानवोचित दृष्टि से अपने जीवन की दिशा तय कर पायेंगे।

किसी काल में इसके परायण का संकल्प लेकर इसकी आवृत्ति तथा पुरश्चरण करते रहना चाहिए नित्य सम्पूर्ण पाठ–कलश स्थापन कर आचमन करें तथा गणेश, श्री राम तथा हनुमान एवम् गुरु का सामान्य स्मरण पूजन कर इसके सम्पूर्ण पाठ का अपनी अभीष्ट सिद्धयर्थ संकल्प लें। यदि कलश स्थापन न कर पायें तो कोई बात नहीं, रामचरित मानस

की जो पुस्तक गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित हैं उसमें सारी विधियां सुस्पष्ट हैं, उसका अनुसरण करें ।

यदि आप घोर संकट में हों, पग-पग पर कठिनाइयों का पहाड़ आ जाता हो, दरिद्रता एवं विपन्नता से जीवन तार-तार हो गया हो, कोई प्रियजन-मरणांतक रोग की चपेट में आ गया हो, धन-समृद्धि, संतति की कामना हो या फिर किसी षडयंत्र में पड़कर अभियुक्त बनकर मुकदमे में फंस गए हों तो वैसी स्थिति में सम्पूर्ण रामचरित मानस का नित्य परायण करना चाहिए क्योंकि मनोरथ जितना बड़ा हो उसकी कष्ट सापेक्षता की मात्रा के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए, जितनी बड़ी समस्या, उतनी तन्मयता से मानस का नित्य परायण करनाा चाहिए । नित्य पाठ करने में ११ घंटे लगभग लग ही जायेंगे । यदि फलदायी संपुट लगाकर पाठ किया जाए तो अत्युत्तम ग्यारह से इक्कीस दिनों में आपका मनोरथ अवश्य ही पूर्ण हो जाएगा ।

अखंड संपुट पाठ—प्रायः रामचरित मानस का अखंड पाठ का अनुष्ठान यत्र-तत्र देखने को मिलता है । कभी-कभी तो वर्षों से इसका अखंड पाठ विश्वशांति एवं मानव-कल्याण के लिए किया जाता है । लोग अपनी इच्छापूर्ति या किसी कामना विशेष के लिए अखंड पाठ का आयोजन करते हैं जो चौबीसों घंटे चलता रहता है । यह पाठ बिना क्षणमात्र के टूटे अनवरत गति से किया जाता है तभी अखंड पाठ इसे कहा जाता है । निमिष मात्र भी अन्तर आ जाने से अखंड पाठ का आयोजन खंडित हो जाता है । इसे मित्रों तथा बंधु-बांधवों के सहयोग से पूरा किया जाता है । इसकी अनवरतता बनाए रखने के लिए एक चौपाई समाप्त होते-होते दूसरी चौपाई को बोलना पड़ता है, ऐसा करने के लिए कि इसकी निरन्तरता बनी रहे । यह दो प्रकार से संभव है । पहला कि एक चौपाई एक आदमी पढ़े और दूसरी चौपाई दूसरा व्यक्ति । दूसरी प्रक्रिया है कि दो समूह में लोग बैठे एक समूह चौपाई प्रथमार्ध पढ़े और दूसरा समूह दूसरा आधा भाग पूरा करें । इस प्रकार पाठ करने में नैरन्तर्य बना रहता है ।

संपुट लगाने की विधि है कि जिस चौपाई से पाठ संपुटित किया जाए उसे प्रत्येक दोहे के आदि और अन्त में लगाया जात है । उस चौपाई से जिसका संपुट किया जात है उसे कई जगह लिखकर रख दिया जाता है । दोहा और छंदों के पूर्व एवं अंत में उस चौपाई को लगाया जाता है तथा अखंड जप पूरा होने तक यही क्रम चलता है । पाठ खंडित न हो इसके लिए एक व्यक्ति को मंत्र जाप के लिए रखा जाता है । पाठ होते समय हमेशा वह व्यक्ति संपुट मंत्र या चौपाई का बराबर जप करता रहता है । यदि अखंड पाठ चौबीस घंटे के पूर्व समाप्त हो जाता है तो संपुट मंत्र या चौपाई का पाठ चलता रहता है ।

यदि संकट निवारण या किसी समस्या के शीघ्र समाधान के लिए अखंड पाठ का आयोजन करना हो तो अपने परिजनों, अपने गुरु एवं पुरोहित के साथ कभी भी कर सकते हैं । ग्यारह अखंड पाठ आदि पूर्णिमा की गणना लेकर किया जाता है तो अत्यन्त उत्तम है पूर्णाहूति नाम संकीर्तन से करें तथा ब्राह्मणों, कन्याओं के साथ बंधु-बांधवों को भोजन कराकर दक्षिणा भी देय लोगों को दें । आपकी कामना निश्चय ही पूर्ण होगी यह निस्संदेह है ।

संपुट पाठ के लिए अपनी रूचि तथा अभिप्राय के अनुसार स्वयं चुन सकते हैं तथा पाठ कर सकते हैं अन्यथा नीचे कुछ कामना विशेष के प्रचलित संपुट दोहा-चौपाई दिए गए हैं उनसे काम लिया जा सकता है ।

मास परायण—आचमन तथा संकल्पादि के पश्चात् रामचरित मानस (गीता प्रेस, गोरखपुर) में दी गई विधि के अनुसार नित्य मास परायण का विश्राम दिया हुआ है वहां तक पाठ करें, फिर यथाविधि पाठ समाप्त कर नैवेद्य ग्रहण कर लें। इस प्रकार प्रतिदिन विश्राम तक पाठ करें । तीसवें दिन अंतिम विश्राम के साथ हवनादिक कार्य सम्पन्न कर व्रत का पुरश्चरण कर लें । इसमें भी संपुट विधि से पाठ किया जा सकता है ।

नवाहून परायण—नवरात्रि व्रत के अवसर पर विशेषतः चैत राम नवमी व्रत पड़ता है उसमें रामभक्त निश्चय ही रामचरित मानस का नवाहून परायण करते ही हैं । मास परायण के लिए जैसे पुस्तक में विभाजन दिया हुआ है उसी प्रकार नवाहून परायण के लिए भी दिया हुआ है । नौ दिनों में उसी आधार पर सम्पूर्ण रामाचरित मानस का परायण सम्पन्न हो जाता है । इसमें भी संपुट पाठ किया जा सकता है । दशमी के पहले ही पूर्णाहूति कर देनी चाहिए । इसके साथ मंत्र जप किया जा सकता है और यह और भी श्रेष्ठ बात है। मंत्र के रूप में किसी भी मंत्र या चौपाई या दोहे को जपकर किया जा सकता है । कामना विशेष से नवाहून परायण करें या संपुट पाठ करें तो संकल्प अवश्य ही ले लेना हैं । इस

प्रकार मंत्र का जप सवा लाख की संख्या में करें और तद्नुसार पुरश्चरण सम्पन्न करें।

संपुट लगाने के लिए कतिपय बहुप्रचलित चौपाई-दोहा हैं

(१) अमंगल-अरिष्ट दूर करने के लिए :

(क) मंगलभवन अमंगलहारी ।
द्रवहुंसोदसरथ अजिरबिहारी ।।

(ख) संकट मोचन कृपानिधान ।
जय हनुमान जय जय हनुमान ।।

(एक सिद्ध साधु का बताया हुआ)

(२) किसी कार्य की सफलता के लिए :

प्रविसि नगर कीजै सब काजा ।
हृदयराखि कोसलपुर राजा ।।

परीक्षा, नौकरी हेतु, मुकदमे में विजय प्राप्त करने के लिए, व्यापारिक यात्रा के अवसर पर, व्यापारिक प्रतिष्ठान लगाने के समय, मकान खरीदने या निर्माण के पूर्व या गृह प्रवेश के लिए इस चौपाई का संपुट लगाकर अखंड पाठ करने से सहज ही मनोवांछित फल मिल जाता है ।

(३) मनोरथ पूर्णता के लिए :

सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे ।
राम लखन सुनिभये सुखारे ।।

(४) गुप्त मनोकामना पूर्ति हेतु :

मोर मनोरथ जानहुँ नीके ।
बसहुँ सदा उर पुर सबही के ।।

(५) गुरुकृपा प्राप्त करने के लिए :

बंदऊँ गुरुपद पदुमपरागा ।
सुरूचि सुबाससरस अनुरागा ।।

(६) गणेश की कृपा पाकर सभी विघ्न-बाधाओं को दूर करने के लिए :

जिहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवरबदन ।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धि सदन सुभ गुण ।।

(७) सत्संग तथा आध्यात्मिक ज्ञान एवं विवेक के लिए:

बिनु सतसंग विवेक न होई ।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।।

(८) सुख-सौभाग्य, गृह-दोष तथा विपत्ति नाश के लिए :

मंगलभवन अमंगलहारी ।
उमा सहित जेहि जपत पुरारी ।।

(९) कष्ट एवं दुख का निवारण कर सुखमय दिन लाने के लिए:

मोर सुधारिहि सो सब भांती ।
जासु कृपा नहीं कृपा अघाती ।।

भगवत्कृपा प्राप्त करने के लिए भी इसका संपुट लगाया जा सकता है ।

(१०) ज्ञानप्राप्ति के लिए :

सुमिरत जाहि मिटहि अज्ञाना ।
सोइ सर्वज्ञ राम भगवाना ।।

(११) शत्रुनाश के लिए :

जाके सुमिरत ते रिपुनासा ।
नाम शत्रुहन बेद प्रकासा ।।

शत्रु की दुश्चिन्ता तथा क्रियाकलाप से कष्ट मुक्ति हेतु, संग्राम तथा मुकदमे में विजय के लिए, वाद-विवाद में प्रतिपक्ष को परास्त करने के लिए इस चौपाई से संपुट पाठ करें।

(१२) सुपुत्र प्राप्ति के लिए :

कौशल्या की गोद में श्री राम बाल रूप भगवान राम का चित्र का विधिवत पूजन कर ग्यारह अखंड पाठ राम चरित मानस का करें । शयनकक्ष में भी भगवान राम का बाल चित्र लगा दें । गर्भवती स्त्री हो तो अपने शयन कक्ष में ऐसा ही चित्र लगा दें । संपुट लगाकर अखंड रामचरित मानस का पाठ परिजन तथा गुरुजन मिलकर करें या फिर पति-पत्नी ही करें ।

पुत्रवती युवती जग सोई ।
रघुपति भगत जासु सुत होई ।।

(१३) आध्यात्कि पूर्णता तथा राम कृपा हेतु :

(क) अरथ न धरम ना कामरूचि, गतिन चहहुँ निरबान ।
जन्म जन्म पद रामरति, यह वरदान न आन... ।।

(ख) सीताराम चरन रति मोरे ।
अनुदिन बढ़ऊं अनुग्रह तोरे ।।

(१४) विपत्तिविनाश के लिए :

(क) राजिव नयन धरैं धनु सायक ।
भगत विपति भंजन सुखदायक ।।

(ख) जयहुँ नाम जप आरत भारी ।
मिटहिं कुसंकट होहिसुखारी ।।

(१५) कठिन क्लेश नाश के लिए :

हरन कठिनकलि कलुष कलेसू ।
महामोह निसिदलन दिनेसू ।।

(१६) विघ्न नाश के :

सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही ।
राम सुकृपा बिलोकहिं जेही ।।

(१७) विविध रोगों तथा उपद्रव नाश के लिए :

दैहिक दैविक भौतिक तापा ।
राम राज नहिं काहुहिं व्यापा ।।

(१८) महामारी हैजा तथा अन्यान्य संक्रामक रोगों के प्रतिकार के लिए :

जयरघुवंश बनज बन भानू ।
गहन दनुजकुल दहन कृसानू ।।

(१९) अपमृत्यु निवारणार्थ :

नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निजपदजंत्रित जाहिं प्रानकेहि बाट ।।

(२०) भूत-प्रेत बाधा निवारणार्थ :

प्रनवऊँ पवनकुमार खल बल पावक ग्यान घन ।
जासु हृदय आगार बसहुँ राम सर चाप धर ।।

हर प्रकार की विपत्ति-नाश के लिए उपर्युक्त संपुट पाठ हेतु एवं रूचि के अनुसार चयन करें । माला तुलसी का हो तथा नैवेद्य अर्पण में तुलसी दल का प्रयोग अवश्य ही करें ।

(२१) खोई वस्तु पुनः प्राप्त करने के लिए :

गई बहोर गरीब नेवाजू ।
सरल सबल साहिब रघुराजू ।।

(२२) दरिद्रता दूर करने के लिए :

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारिके ।
कामद धन दारिद दवारि के ।।

(२३) लक्ष्मी प्राप्ति के लिए :

(क) जिमिसरिता सागर महुँ जाहीं ।
जद्यपि ताहि कामना नाहीं ।।
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाए ।
धरम सील पहिं नाहिं सुनाएं ।।

(ख) जे सकामनर सुनहिं जे गावाहिं ।
सुख संपति नाना विधि पावहिं ।।

(२४) मनोरथ सिद्धि के लिए :

भवभेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि ।
तिन्हकर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिपुरारि ।।

(२५) मुकदमे मे विजय पाने के लिए :

पवन तनयबल पवन समाना ।
बुधि विवेक विज्ञान निधाना ।।

(२६) शत्रु को मित्र बनाने के लिए :

गरल सुधा रिपु करइ मिताई ।
गोपद सिंधु अनल सितलाई ।।

(२७) शत्रुता नाश करने के लिए :

बालारून कर काहू सन कोई ।
राम प्रताप विसमता खोई ।।

(२८) विवाह के लिए :

तब जनक पाई वसिष्ठ आयसु व्याह साजि संवारि कै ।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुंवरि लई हंकार कै ।।

(२९) आकर्षण के लिए :

जेहिं के जेहिं पर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलहि न कछु संदेहू ।।

(३०) प्रेम बढ़ाने के लिए :

सब नर करहिं परस्पर प्रीती ।
चलहिं स्वधर्म निरतश्रुति नीती ।।

(३१) भगवत्स्मरण करते हुए शांतपूर्वक मरने के लिए :

राम चरण दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कंठ तें गिरत न जानईनाग ।।

साबरमंत्र जाल जेहिं सिरजा

साबर मंत्र-तंत्र साधना की एक पृथक एवं प्रभावशाली शाखा है। वैदिक एवं तांत्रिक साधनायें जहां क्लिष्ट एवं श्रम साध्य होने के साथ-साथ विधि-नियमों के बंधन में जकड़ी हुई हैं तथा उनमें इतनी जटिलता तथा नियम-परिनियम हैं जिनका निर्वाह अत्यंत संयमित तथा सुशिक्षित साधक ही कर सकता है। अनुष्ठान के कठिन विधि-विधान में किंचित त्रुटि भी लंबी से लंबी साधना को निष्फल कर सकती है। इसके अतिरिक्त वैदिक मंत्र को सिद्ध करने में जिस कठोर संयम की आवश्यकता होती है वह आज के दूषित वातावरण तथा मिश्रित संस्कृति में संभव नहीं है। तंत्र साधनायें अपेक्षाकृत सरल हैं तथापि इनकी साधना में भी कुछ ऐसी विषम परिस्थितियां साधक के सामने आ जाती हैं जिनका सामना सामान्य व्यक्ति के द्वारा नहीं कर पाने के कारण उसमें शारीरिक एवं मानसिक विकृतियां आने की संभावना भी कम नहीं है। तंत्र साधना पुस्तकीय साधना नहीं है, पुस्तकें पढ़कर तांत्रिक क्रियाएं करने वाले साधक कदाचित ही सफल हो पाते हैं। इसके विपरीत सिद्धि नहीं प्राप्त करने की स्थिति में उनमें श्रद्धा और विश्वास की इतनी कमी हो जाती है कि वे सामान्य पूजा भी ठीक से नहीं कर पाते हैं। इसके अतिरिक्त उनके जीवन में पग-पग पर आपदायें आती रहती हैं जो मंत्र देवता के रूष्ट होने के फलस्वरूप आती रहती हैं जिनकी शांति के लिए तथा जीवन सामान्य बनाने के लिए उपचार हेतु उन्हें किसी सुयोग्य तांत्रिक की सहायता लेनी पड़ती है। तांत्रिक साधना की अपनी सीमायें और मर्यादायें हैं जिनका पालन किए बिना तांत्रिक साधना फलदायी न होकर हानिकारक हो जाती है। इसमें पहली मर्यादा गुरु की होती है। किसी सुयोग्य एवं शास्त्रज्ञ अनुभवी तांत्रिक साधक को अपना गुरु बनाकर उनके सन्निध्य या मार्ग दर्शन में साधना करने से अपेक्षित सफलता मिल सकती है। स्थान-विशेष, काल विशेष तथा नियम विशेष का पालन करते हुए भी यदि व्यक्ति में अपेक्षित पात्रता न हो तो साधना में सिद्धि प्राप्त करना दुष्कर है। हां, कुछ तांत्रिक साधनायें कल्याणकारी तथा सरल हैं जिनकी साधना पूर्ण श्रद्धा-विश्वास से की जाए तो अपेक्षित लाभ उठाया जा सकता है तथा अपना तथा दूसरे का उपकार किया जा सकता है। इसमें सामान्य रक्षा विधान, विनियोग एवं न्यासादि की सामान्य विधियों का पालन करते हुए इन्हें प्रभावकारी ढंग से सम्पन्न किया जा सकता है, किन्तु इनकी भी साधना श्रमसाध्य एवं क्लिष्ट हैं तथा काफी अवधि के पश्चात् इनमें प्रवीणता प्राप्त हो सकती है। साथ ही, इनमें भी अपेक्षित कठोर अनुष्ठान के नियमों का पालन करना ही पड़ता है। वैदिक और तांत्रिक साधना चाहे जैसी भी हों उनमें सफल होने के लिए अनुष्ठान के सभी नियमों का पालन करना ही पड़ता है।

साबरमंत्र किसी एक ग्रंथ में संकलित नहीं मिलते। इन्हें साधु-संतों, अनुभवी साधकों के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। ये कहीं भी वेदों में, पुराणों में, शास्त्रों में एक जगह संकलित नहीं मिलते। इनका गठन भी किसी विशेष नियमों के या व्याकरण के आधार पर नहीं किया जाता है। इनमें प्रमुख शक्ति इनका ध्वनि-स्फोट हैं। इनके वर्णो में, अक्षरों में, गठन में किसी प्रकार की नियमबद्धता नहीं रहती है। साधु संतों में विशेषकर नाथपंथी साधुओं के माध्यम से, ग्रामीण पुजारियों तथा आदिवासी संतों से अपनी यात्रा प्रारंभ करने वाला साबर-तंत्र आज प्रायः विस्तार की दृष्टि से सबसे समृद्ध है। गुरु गोरखनाथ तथा उनके गुरु मच्छेन्दर नाथ ने साबर मंत्रों को जन सामान्य में लोकप्रिय तथा प्रभावकारी बनाया। उसके बाद तो यह तांत्रिक शाखा कई शाखाओं में, कई विधाओं में फैल गई है। सधुक्कड़ी भाषा के साथ-साथ विभिन्न प्रदेशों के शब्द एवं संबोधन आन-बान ही इन मंत्रों की देह यष्टि है। उन शब्दों को, अक्षरों को आन-बान को इस तरह गुंफित किया गया है कि ध्वनि-स्फोट का प्रभावकारी प्रयोग इन मंत्रों का प्राण तत्व है और इनके संचालन तथा प्रयोग में विश्वास एवं श्रद्धा का अनुपात ही सिद्धि-प्राप्ति की नींव की ईंट है। इनके शास्त्रीय विधि-विधान भी कोई आवश्यकता और ना ही स्थान विशेष का 'आग्रह' कहीं भी, कभी भी इनका प्रयोग सिद्ध हो जाने पर किया जा सकता है। इनकी श्रेष्ठता, अक्षरों का गुंफन, ध्वनि तरंगों का प्रभाव प्रत्यक्षतः प्रमाण है, तभी तो इनके बारे में संत तुलसीदास ने कहा–

अनमिल आखर अर्थ न जापू।
प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू।।

और, इनको भगवती पार्वती ने कलिके प्राणियों के हित को देखकर किया–

कलि बिलोकि हेतु हर गिरजा ।
साबर मंत्र जाल जेहि सिरजा ।।

वैदिक और तांत्रिक मंत्र प्रायः भगवान शिव ने उनके दुरुपयोग न करने के लिए कीलित कर दिए है, किन्तु साबर मंत्र अपना प्रभाव दिखाने में पूर्ण समर्थ हैं क्योंकि ये कीलित नहीं है। सामान्य नियमों का पालन कर लेने के पश्चात् ये सिद्ध हो जाते हैं तथा प्रयोग में लाए जा सकते हैं । हां, इन्हें आजीवन प्रभावशाली बनाए रखने के लिए विशेष पर्वकाल में इन्हें बार-बार विधि-विधान से जप लेने का निर्देश गुरुओं ने दिए हैं । इनका प्रयोग भी करते रहना चाहिए । इन्हें सिद्ध कर लेने के बाद इनका प्रयोग करते रहना आवश्यक है, किन्तु ये प्रयोग सर्वथा लोकहित में करना अपेक्षित है । अभिचारों के अनावश्यक प्रयोग करने से इनमें भी दंड का प्रावधान है, किन्तु जितना परोपकार किया जाए लोकहित और लोकमंगल के लिए उतना ही साधक की सामर्थ्य बढ़ती है तथा वह सर्व लोकों में पूज्य बनकर मानवता का आदर्श स्तंभ बन सकता है । इनके सिद्ध करने में जैसा पूर्व में कहा जा चुका है उत्कीलन की कोई व्यवस्था नहीं है ।

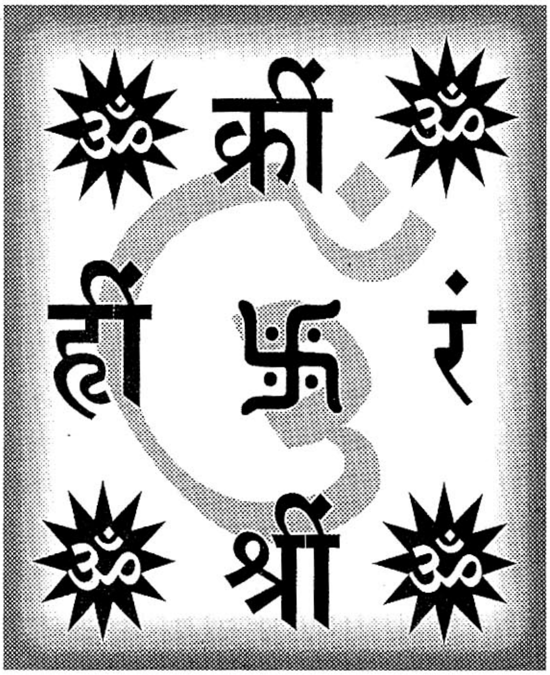

ये साबर मंत्र अनपढ़ व्यक्ति से लेकर महान् विद्वान व्यक्ति के लिए भी एक समान उपयोगी होते हैं तथा जीवन के हर क्षेत्र में इनका प्रभाव परिव्याप्त हो जाता है । इनका प्रभाव जड़-चेतन सभी-पदार्थो और जीवों पर सद्यः अनुभूत हो सकता है । इनका न कोई कठोर विधि-विधान है, ना न्यास-जाल है, ना उत्कीलन विधि है, इनके अर्थ पर किसी प्रकार के अनुसंधान की आवश्यकता नहीं है । इनकी विशेषता है कि छोटे-मोटे प्रयोजन से लेकर बड़े-बड़े प्रयोजनों जैसे मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि अभिचार कर्मों में ये अपना अक्षुण्ण प्रभाव छोड़ते हैं । विभिन्न चमत्कारों को दिखाना, नजर बांध देना, रोग, भूत-प्रेत-बाधा आदि तो साबर मंत्रों के लिए सहज साध्य है ।

साबर मंत्र की तरह साबर टोटका तथा साबर यंत्र भी काफी प्रभावशाली होते हैं । गंडा और ताबीज बहुत ही असरदार होते हैं । अपकार एवं उपकार दोनों ही भावनाओं को रखकर इनका प्रयोग अचूक होता है, मंत्र शक्ति का प्रयोग परोपकार तथा जन कल्याण के लिए किया जाना चाहिए जिससे मनुष्य में देवत्व का विकास एवं संरक्षण हो । आभिचारिक कर्म से अपकार या किसी का अहित करने से आसुरी प्रवृति का विकास तथा संरक्षण होता है जो कालान्तर में स्वयं साधक को भारी क्षति पहुँचा सकता है । साबर मंत्र यदि पूर्णरूपेण सिद्ध हो जाए तो इनका महत्व तथा प्रभाव कभी निष्फल नहीं होता। इन मंत्रों की सिद्धि दीपावली की महानिशा, ग्रहणकाल तथा होली की रात्रि में करने का विधान है तथापि अत्यावश्यक होने पर या विवशता में इन्हें मंगलवार या रविवार को भी सिद्ध किया जा सकता है । इनकी सिद्धि में ज्यादा सामग्री या उपचार की आवश्यकता नहीं होती । साधारण हवन सामग्री से इन्हें वर्ष में एक बार जागृत कर हमेशा के लिए प्रभावकारी बनाए रखा जा सकता है । सिद्ध मंत्रों का प्रयोग बिना किसी जटिलता के बिना किसी अनुष्ठान के किया जा सकता है । गुरु तथा अनुभवी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता साबर मंत्रों की सिद्धि में आवश्यक है जो साधना-पथ के रहस्यों से अवगत हो । ध्यान की प्रगाढ़ता और लक्ष्य किंवा प्रयोजन के प्रति एकाग्रता इसमें भी आवश्यक है । कहीं भी जहां एकान्त मिले, मच्छरों या विषैले जीवों का प्रकोप न हो उस स्थान पर इसे सिद्ध करना पड़ता है जाकि ध्यान और एकाग्राता भंग न हों । साबर मंत्र के सिद्ध गुरु कामाख्या तथा विंध्याचल क्षेत्र में मिलते हैं जिनसे सम्पर्क स्थापित कर अधिक जानकारी मिल सकती है ।

अब साबर-सिद्धि के सामान्य नियमों की चर्चा करें :

(१) इसकी साधना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय दीपावली की महानिशा, ग्रहणकाल तथा होली की रात्रि होती

है। अन्यकाल पूर्णिमा तथा अमावस्या, सिद्धरात्रि तथा मंगलवार और रविवार है। यदि मंगलवार तथा रविवार को अमावस्या या पूर्णिमा पड़े तो इसका कहना ही क्या ?

(२) रात्रि के ११ बजे से प्रातः ५ बजे तक का समय सर्वथा उपयुक्त रहता है।

(३) नदीतट, शिवालय या कोई मंदिर, तीर्थ-स्थान, वन-प्रान्तर, पीपल-वृक्ष के नीचे, श्मशान या फिर एकान्त अपने घर का एक कोना ही पर्याप्त होता है।

(४) इन मंत्रों को गुरु से प्राप्त कर लेना चाहिए अथवा एक-एक बार कर सात बार पीपल के पत्तों पर सात बार लिखकर भगवान शिव-विग्रह, गुरुविग्रह के समक्ष रख देना चाहिए तथा भाव बनाए रखना चाहिए कि अनुमति प्राप्त हो गई।

(५) साबर साधनाओं को किसी भी जाति, वर्ण, रंग, आयु का पुरुष या स्त्री के द्वारा किया जा सकता है। इसमें धर्म, जाति, लिंगभेद तथा आयु का कोई विचार नहीं किया जाए।

(६) मंत्र के वर्ण, अक्षर, शब्द में किसी प्रकार का परिवर्तन अपने से नहीं करना चाहिए। जैसा उच्चारण गुरु के द्वारा या जैसे लिखा हुआ है वैसा ही उच्चारण करना चाहिए। मंत्र में किसी प्रकार का अपने से परिवर्तन करना अभीष्ट दायक नहीं होता।

(७) कुछ विशेष साधनाओं के लिए वस्त्र-परिधान, आसन आदि का निर्देश तो मिलता है किन्तु प्रायः पीले या गुलाबी रंग की धोती तथा आसन मान लेना है तथा जहां दिशा निर्देश नहीं है वहां उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुखकर सिद्ध करना चाहिए, कहीं-कहीं दक्षिण दिशा या निर्देश है किन्तु वह क्रूर कर्म तथा अभिचारिक कार्यो के लिए ही प्रशस्त होता है।

(८) गुगुल युक्त धूप या लोहबान से हवन किया जा सकता है यदि किसी सामग्री विशेष का निर्देश न हो तो।

(९) दीपक में घी या तिल के तेल का दीया जलाकर साधना काल तक अवश्य ही रखना चाहिए। अगरबत्ती या बढ़िया इत्र का छिड़काव कर साधना स्थल को सुवासित बनाकर रखना चाहिए।

(१०) माला रुद्राक्ष की, हकीक की १०८ या १०१ मनके वाली होनी चाहिए।

(११) साधना काल में अच्छे या बुरे जो भी संकेत मिलें उससे प्रभावित न होकर पूरी जप संख्या पूरी करें।

(१२) एक ही साधना सामग्री से एक बार ही साधना करें। दूसरी साधना में नयी सामग्री लें।

(१३) साबर मंत्र में गुरु तथा अनुभवी पथ प्रदर्शक की परमावश्यकता है। उनके सान्निध्य में या उनका चित्र साधना-काल में सामने रखकर अनुमति प्राप्त कर साधना करें।

(१४) श्रद्धा एवं विश्वास के अनुपात में ही सिद्धि तथा प्रयोग में सफलता मिलती है। भक्ति एवं पूर्ण श्रद्धा एवं अपनी सिद्धि के प्रति पूर्ण आश्वस्त होकर साधना सम्पन्न करें।

(१५) एक भुक्त तथा ब्रह्मचर्य का पालन साधना काल में करें। अल्पावधि की साधना में केश-नख कटाना, साबुन लगाना नहीं चाहिए, किन्तु दीर्घ कालीन साधना में जैसे भी रहना हो रहें।

(१६) यदि किसी कारणवश सफलता न मिले तो हताश या निराश न हों। सिद्धि प्राप्त होने तक अपनी साधना की आवृति करते रहें।

(१७) सामग्री तथा यंत्रादि प्रामाणिक तथा शुद्ध होने चाहिए।

साधना का क्रम

शुद्ध स्थान पर आसन बिछा लें। साधना-स्थल को सुवासित कर लें। उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख होकर आसन पर बैठें। सामने गुरु या इष्ट का चित्र या यंत्र स्थापित करें तथा घी या तेल का एक दीपक जला लें। साथ में शुद्धपात्र में गंगाजल या कूप जल रख लें। थोड़ा नैवेद्य, फूल, अक्षत, सुपारी, पान, लौंग-इलायची भी रख लें।

(१) **संकल्प लें :** स्थान-काल का उच्चारण करते हुए अभीष्ट कार्य के लिए संकल्प लें।

(२) गुरु-इष्ट का पंचोपचार से पूजन कर लें। फिर एक माला इस सुमेरु मंत्र को जपें :

गुरु सठ गुरु सठ गुरु हैं वीर
गुरु साहब सुमिरौं बड़ी भांति
सिंगी टोरों वन कहीं
मन नाउ करतार
सकल गुरुन को हर भजे
घटा पकर उठ नाग
चेत संभार परम हंस

(३) गणेश का पंचोपचार से पूजन कर "वक्रतुंडाय हुम् " इस मंत्र की एक माला जपें ।

(४) दिग्बंध करें : राई या पीली सरसों बाई हथेली में रखकर दाहिने हाथ से दसों दिशाओं में निक्षिप्त करें–

वज्रकोधाय महादन्ताय दश-दिशा बंध, बंध हूंफट् ।

(५) रक्षा विधान भी निम्न मंत्र को पढ़कर हथेली फूंके तथा उसे अपने पूरे शरीर पर फेर लें । नौ बार, सात बार, तीन बार

जल बांधों, थल बांधों, बांधों अपनी काया, सात सौ योगिनी बांधों बांधो जगत की माया, दुहाई कामरू कमच्छा नैना योगिनी की, दुहाई गौरा पार्वती की, दुहाई वीर मसान की।

(६) *ॐ नमो परमात्मने पर ब्रह्म मम शरीरे पाहि-पाहि कुरु-कुरु स्थाहा* (एक माला) ।

कुछ साबर मंत्र

(१) रक्षा-कवच मंत्र तथा बहुप्रयोजनीय मंत्र सात माला जप कर एक माला हवन कर सिद्ध कर लें :

ॐ नमो आदेश गुरु को ईश्वरो वाचा,
अजरी बज्जरी बड़ा बज्जरी मैं बज्जरी बांधा,
दंसो दुआर छावा और के घालों तो
पलट हनुमंत वीर उसी को मारे
पहली चौकी गनपती दूजी चौकी हनुमंत
तीजी चौकी में भैरव चौथी चौकी देव रक्षा करन को
आवें श्री नरसिंह देव जी
शब्द सांचा, पिंड सांचा चले मंत्र ईश्वरी वाचा ।

इसके प्रयोग घर बांधने, उपद्रव ग्रसित घर को शुद्ध करने, शारीरिक कष्ट से मूर्च्छित व्यक्ति को होश में लाने के लिए, सर्व मंगल प्राप्ति के लिए, शरीर रक्षा के लिए करना चाहिए ।

(२) शत्रु और प्रतिद्वन्द्वी को परास्त करने के लिए : एक माला पढ़कर एक माला हवन करें :

हाथ बसें हनुमाने भैरों बसे लिलार
जो हनुमंत का टीका करे मोहे जग संसार
जो आवे छाती पांव धरे बजरंग वीर रक्षा करें
महमदा वीर छाती टोर जुगुनिया वीर शिर फोर
उगुनिया वीर मार मार भास्वंत करे
भैरों की आन फिरती रहे
बजरंग वीर रक्षा करें जो हमरे ऊपर घाव-छाले
तो पलट हनुमान वीर उसी को मारे
जल बांधे थल बांधे आयो आसमान बांधे कुदवा
और कलवा बांधे चकचक्की आसमान बांधे
वाचा साहिब–साहिब के पूत धर्म के नाती
आसरा तुम्हारा है ।

(३) चिंतित कार्य की सफलता के लिए :

ॐ हर त्रिपुर हर भवानी बाला
राजा प्रजा मोहिनी सर्व शत्रु ।
विंध्यवासिनी मम चिंतित फलं
देहि देहि भुवनेश्वरी स्वाहा ।

दीपावली की रात में ११ बजे से ५ बजे तक १० हजार जपकर एक माला हवन करें । हर महानिशा को मंत्र सिद्ध करते रहना चाहिए । जब जरूरत हो नित्य एक माला या ११, २१, ५१ बार जप लें ।

(४) अभिचार, नज़र, मंत्र फेरने के लिए :

ऐसा लगे कि कोई शत्रु आपसी जलन या द्वेष वश आप पर कुछ प्रयोग कराकर परेशान कर रहा हो तो इस साबर मंत्र का प्रयोग करें । १० माला जपकर हवन १ माला रविवार या मंगलवार को प्रयोग करें ।

उलटत वेद पलटत काया-जाओ बच्चा तुम्हें
गुरु ने बुलाया सतनाम आदेश गुरु का ।

रविवार या मंगलवार रात्रि ११ बजे घर से किसी चौराहे पर जाकर मार्ग में ७ कंकड़ उठा लें । थोड़ी शराब भी ले लें । चौराहे पर पहुँचकर एक कंकड़ पूरब की ओर फेंकते हुए मंत्र पढ़ें, फिर दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की ओर मंत्र पढ़कर कंकड़ फेंक दें । एक ऊपर तथा एक नीचे फेंके । सातवीं कंकड़ को चौराहे के बीच रखकर उस पर शराब उँडेल दें मंत्र पढ़ते हुए । घर पर आकर पहले से रखे पानी से हाथ-पैर धो लें तथा कुछ जल अपने ऊपर छिड़क कर घर में जाएं ।

(५) सर्व बाधा हरण करने के लिए :

महानिशा में १० माला जप १ माला हवन करें :

ॐ नमो आदेश गुरु का धरती में बैठा
लोहे का पिंडराख लगता गुरु गोरखनाथ
आवंता जावंता धावंता हांक देत
धार-धार मार मार शब्द सांचा फुरो वाचा ।

(६) घर में चोरी न होने का मंत्र :

घर में घुसै तो माता खाय चोरी करै तो
मर मर जाय ।
मोरे घर भैरों की रक्षा करै भैरवी दुआर की रक्षा
जो कोई आवै जान गंवावै गुरु की शक्ति मोरी भक्ति
फुरो मंत्र ईश्वरी वाचा ।

यह निशा में १० हजार मंत्र का जप तथा हवन कर लें। नित्य घर में सोने के पहले पूरे घर में घूम-घूमकर इस मंत्र को जपते हुए तालियां बजावें फिर दरवाजा बंद करके सो जाएं।

(७) चोर और चोरी के सामान की जानकारी के लिए

मंत्र को १०८ बार जप कर एक माला हवन कर सिद्ध कर लें। सिद्ध होने के बाद जब कहीं चोरी हो या अपने घर में ही हो तो इस मंत्र को नदी, तालाब व झील के किनारे या कुंऐं की जगत पर १२१ बार पढ़ते हुए सो जाएं। स्वप्न में चोरी की गई वस्तु चोरी के सामान रखने का स्थान, चोर का चेहरा तथा उसका पूरा हुलिया सामने आ जाएगा। स्वप्न में पूछने पर नाम भी पता चल जाएगा–

उद्द मुद्द जल्ल जलाल पकड़ चोरी कर पछाड़,
भेज मुद्दा लाव मुद्दा यकदु हारोयाकदुहारो ।

(८) लक्ष्मी प्राप्ति के लिए (महालक्ष्मी मंत्र) :

राम राम वाया फरे, चीनी मेरा नाम
सर्वनगरी बस में करूं, मोहूँ सारा गाँव,
राजा की बकरी करूँ, नगरी करूँ बिलाई
नीचा में ऊँचा करूं, सिद्ध गोरखनाथ की दुहाई ।

गुरुवार को पुष्य नक्षत्र में कमल गट्टे की माला पर १ एक माला मंत्र जपें, फिर प्रतिदिन ४० दिनों तक एक माला जपें। मंत्र सिद्ध हो जाएगा। फिर माला ग्यारह बार जपें।

(९) दुकान की बिक्री बढ़ाने के लिए :

आशातीत लाभ होगा। घर से नहा-धोकर दुकान में आकर जहां लक्ष्मी जी मूर्ति या चित्र हो उसकी आरती कर गद्दी पर बैठकर एक माला जपकर दुकान का लेन-देन करें–

श्री शुक्ले महाशुक्ले कमलदल निवासे
श्री महालक्ष्मी नमो नमः ।
लक्ष्मी माई, सत श्री सवाई ।
आओ चेतो करो भलाई ।
न करो तो सात समुद्रों की दुहाई ।
ऋद्धि सिद्धि खाओगी तो
नौ नाथ चौरासी सिद्धों की दुहाई ।

महासिद्धपीठ : विंध्याचल

धर्म एवं संस्कृति के शिखर हमारे तीर्थ हजारों वर्षो से हमारी प्रेरणा के स्रोत्र रहे हैं जहां हम पवित्रता, शुद्धता और संस्कार की शिक्षा तो पाते ही हैं साथ ही साथ अपने सांस्कृतिक मूल्यों के अभिरक्षण के लिए सदैव बलिदान की प्रेरणा भी पाते रहे हैं। भारतीय धर्म एवं संस्कृति के स्थल प्राकृतिक सुषमा मंडित पर्वत शिखरों, नदियों की उपत्यकाओं तथा सार्वजनिक स्थलों पर अवस्थित हैं तथा हमारी आस्था और श्रद्धा के प्रतीक स्वरूप हमारे तथा पर्यटकों के आकर्षण के केन्द्र भी रहे हैं। ऐसा ही एक तीर्थ स्थल है विंध्य पर्वत पर अवस्थित महासिद्धपीठ विंधयवासिनी देवी का मंदिर। विंध्य क्षेत्र का यह स्थान प्राचीनता की दृष्टि से उतना ही प्राचीन है जितना मानव का उद्भव और विकास। एक चामत्कारिक सिद्धपीठ के रूप में जितने भी शक्ति पीठ हैं उनमें इसका महत्व सर्वोपरि है। श्री दुर्गा सप्तशती का विग्रह स्वरूप यह विंध्यक्षेत्र काशी की तरह भूभाग में अन्यतम है। यह प्राकृतिक श्री पीठ है। हवाई सर्वेक्षण से यह विश्रुत है कि पूरा विंध्यक्षेत्र प्राकृतिक श्रीयंत्र की आकृति के सदृश है और उसके मध्य में महालक्ष्मी विंध्यवासिनी पीठ स्थापित है। इसका सर्वप्रथम आख्यान श्री मद्देवी भागवत् में मिलता है कि अपने गुरु द्वारा छले जाने पर विंध्य हजारों वर्ष तक पड़े रहने के कारण पीड़ा और कष्ट से अत्यंत दुखी हुआ तथा भगवती का स्मरण करने लगा तो भगवती ने प्रकट होकर उसे वरदान दिया कि स्वयंभुव मनु जब उनकी स्थापना करेंगे तो वह देवी त्रिलोक में सबके द्वारा पूजित होगी तथा उनकी तपस्या तथा पुण्यफल से विंध्याचल की पीड़ा दूर हो जाएगी। महाप्रलय के बाद स्वयंभुव मनु ने विंध्यपर्वत पर मृण्मयी पिंडी की स्थापना कर उसमें भगवती की प्राण प्रतिष्ठा कर पूजा अचर्ना की और प्रजा-सृजन में वरदान पाकर उद्यत हुए। देवी पुराण के दशम स्कंध के ५वें से ७वें अध्याय में यह आख्यान आया है। महाभारत में भी ऐसा ही आख्यान है, गुरु के द्वारा छले जाने पर भी विंध्याचल का उत्कर्ष बढ़ता ही गया और ऐसा कोई श्रेष्ठ तपस्वी नहीं चाहे वह देव, दनुज, मिन्नर, यक्ष, मनुष्य जिस भी योनि का हो जो विंध्यवासिनी की पूजा अर्चना कर सिद्धि प्राप्त करने न आया हो। महर्षि अगस्त्य का कर्तव्य देव कार्य के लिए हुआ था, किन्तु एकलव्य के छलने का अपराध जैसे गुरु द्रोण पर लगता है वैसा ही विंध्य के छलने का अपराध उनके गुरु अगस्त्य ने किया था। विंध्यपर्वत धन्य है कि लाखों वर्ष बीत जाने के बाद भी अपने गुरु के आज्ञा की अवहेलना न कर उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है। वैसे भी विंध्य पर्वत देवी के अधिष्ठान से महिमामय बना हुआ है।

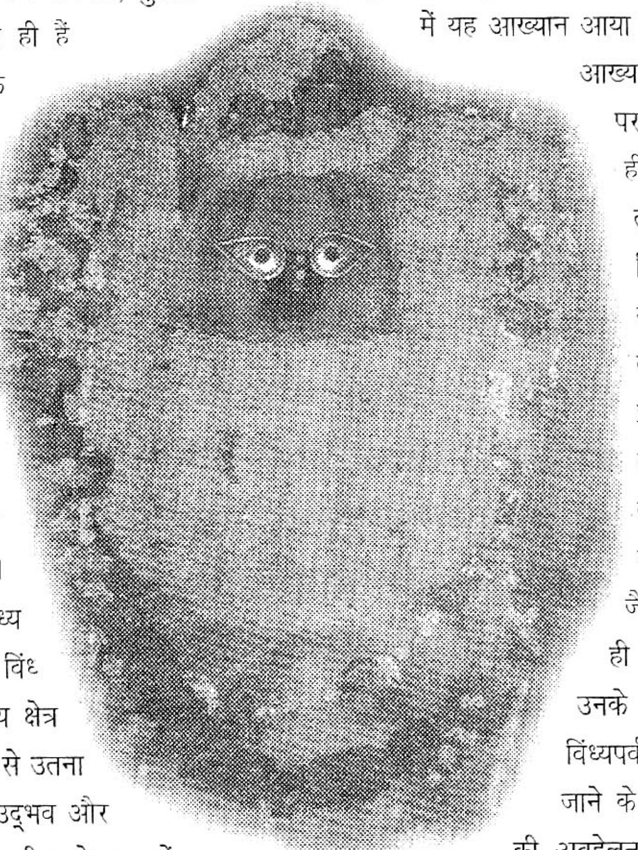

भारत के मध्य में पश्चिम से पूर्व तक विंध्यगिरि हिमाचल से भी प्राचीन तथा ऊंचा पर्वत था। अरबों वर्ष पूर्व जब दक्षिण भारत, अरब प्रायद्वीप और एटलस पहाड़ के अतिरिक्त, अफ्रीका और दक्षिण अमेरीका से लगा हुआ था तथा समस्त क्षेत्र गोंडवाना लैंड के नाम से भू-गर्भशास्त्रियों ने चिन्हित किया। इसी प्रकार उत्तर में रूस, स्कैण्डीनेविया, स्काटलैंड, आयर लैंड, आइस लैंड, ग्रीन लैंड, उत्तरी अमेरिका आदि भू-भाग भी परस्पर जुड़े हुए थे और उसे अंगारालैंड से चिन्हित किया गया था। उस समय हिमालय तथा आल्प्स पर्वत का नामोनिशान नहीं था वह स्थान हिम महासागर से जलाप्लावित था। तब हिमसागर के दक्षिण पार्श्व में अब स्थित विंध्यगिरि से सोनभद्र, तमसा, केन, वेत्रवती, चंबल और सिंधु नदियां

निकलती थीं। फिर अगणित ज्वालामुखी विस्फोटों से विन्ध्यक्षेत्र में आमूल परिवर्तन हुआ। महाप्रलय का दृश्य उत्पन्न हो गया। केवल प्रयाग का अक्षयवट ही दृष्टिगोचर होता था। तब मनु ने प्रजा की सृष्टि इसी विंध्यपर्वत पर की तथा विंध्यवासिनी महालक्ष्मी की स्थापना की। हिमालय की नदियों से सिंधु गंगा का मैदानी भाग में मानवी सभ्यता बसने लगी। आठ बार विश्व में जल प्रलय आया किन्तु काशी का तरह विंध्यान्चल भी सुरक्षित रहा तथा प्रलय के पश्चात् भी इसकी गोद में कई मनु आये और सृष्टि का कार्य अनवरत रूप से चलता रहा। इतनी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर को न जानने वाले उन भारतवासियों के अधोगति का क्या कहा जाए जो अपनी संस्कृति सभ्यता को तिलांजलि देकर पाश्चात्य शैली के जीवन का अनुकरण कर रहे हैं। विंध्यपर्वत और विंध्यवासिनी अक्षय हैं और विभिन्न काल खंडों में मनुओं की सृष्टि रचना के पूर्व विंध्यवासिनी विभिन्न रूपों में पूजित होती रहीं हैं। अतएव, १०८ या ५१ सिद्ध पीठों में इसकी गणना नहीं होती। यह किसी भी शक्ति पीठ की धारणा की परिगणना करने पर भी अधिक प्राचीन तथा महिमामय है और यह न तो सिद्ध पीठ है और न कोई शक्ति पीठ वरन् यह महासिद्ध पीठ है जो प्राकृतिक श्री यंत्र पर अवस्थित होने के कारण महालक्ष्मी के रूप में तो त्रेता में महाकाली के रूप में, द्वापर में कृष्ण अनुजा महासरस्वती के रूप में पूजित होती रही हैं और कल्कि अवतार में भगवान की शक्ति के रूप में इनका वास खड्ग में होगा तथा दुष्टों का संहार करने के पश्चात् भगवान की आद्याशक्ति के रूप में इन्हें पुनः विंध्यवासिनी का ही गौरव प्राप्त होगा। काशी की तरह विंध्याचल कभी नष्ट नहीं हुआ है और न कभी होगा और प्रत्येक प्रलय एवं महाप्रलय के पश्चात् इनका वरदान पाकर ही सृष्टि रचना का कार्य प्रारंभ होता रहेगा तभी तो विंध्यवासिनी के भैरव हैं विश्वेश्वर विश्वनाथ-दोनों ही अक्षय और सनातन।

नाथ पंथ के प्रख्यात योगिराज भतृहरि की तपस्थली भी विंध्य क्षेत्र रहा है। बाबरनामा में भी विंध्यारण्य का मनोरम वर्णन आया है। स्वाधीन भारत में तो इसका विकास हो रहा है। अब उसमें गति भी आ गई है जिसे यहां आकर अनुभव किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश में मिर्ज़ापुर से आठ किलोमीटर पूर्व में विंध्याचल है जहां विंध्यवासिनी का शाश्वत निवास के प्रतीक रूप में मंदिर निर्मित है। आज से ४० वर्ष पूर्व के विंध्याचल और आज के विंध्याचल में जमीन-आसमान का अंतर हो गया है। अब तो वह गहन, अभेद्य कान्तार दिखता ही नहीं। कभी कभार ही बाहर के पर्यटकों का दर्शन नवरात्रि के दिनों को छोड़कर होता था। अब तो चाहे कोई पर्व, उत्सव हो या न हो झुंड के झुंड लोग विदेशी पर्यटक आदि पूजा-अर्चना तथा दर्शन के लिए प्रतिदिन आते ही रहते हैं। प्रतिदिन देश के विभिन्न प्रदेशों से हजारों लोग यहां आकर भगवती विंध्यावासिनी का दर्शन पूजन कर अपने को कृत्यकृत्य मानते हैं तो नवरात्रि पर्वो में लाखों तीर्थयात्रियों के आगमन से यह स्थान जन-समुद्र का रूप ले लेता है। दिन-रात लोगों से भरा पड़ा रहता है यह विंध्यक्षेत्र विशेषकर विंध्यवासिनी के आस-पास का भू-भाग। मां की महिमा का स्मरण होते ही रोमांच के अनेक क्षण आते-जाते रहते हैं। उन दिनों एक आध रेलगाड़ी को छोड़कर प्रायः सभी रेलगाड़ियां नवमी तक विंध्याचल स्टेशन पर रूकती हैं, किन्तु अब किसी भी दिन निम्नांकित गाड़ियों का रूकना यहां होता है–दिल्ली हावड़ एक्सप्रेस, बॉम्बे जनता एक्सप्रेस, महानंदा एक्सप्रेस, जनता एक्सप्रेस, हावड़ा-बॉम्बे मेल, महानगरी एक्सप्रेस, त्रिवेणी एक्सप्रेस आदि। अन्य गाड़ियों से आने वाले यात्री मिर्ज़ापुर से बस, ऑटो, टैक्सी, आदि सवारियों से सुविधापूर्वक पहुँचते रहते हैं। विंध्याचल-वाराणसी, विंध्याचल-इलाहाबाद एवं विंध्याचल-जौनपुर के मार्ग में अनेकानेक बसें चलती हैं। यहां पहुँचकर रूकने की भी कोई समस्या नहीं है यहां ठहरने के लिए सस्ते-महंगे होटलों के अलावा अनेकानेक धर्मशालायें भी हैं। जिनकी जानकारी स्थानीय लोगों से लेकर यात्री ठहरते हैं।

आदिवासी और अन्य गैर-आदिवासी समुदायों के द्वारा पूजित भगवती विंध्यवासिनी की मूर्ति की प्राचीनता के बारे में ठीक-ठीक अनुमान लगाना संभव नहीं है। सर्वप्रथम तो मृण्मयी पिंडी बनाकर देवी प्रतिष्ठा तथा पूजा-अर्चना महामुनि स्वयंभुव मनु ने की जिसे गंगातट पर अवस्थित होने का उल्लेख पुराणों में प्राप्त है, किन्तु इस स्थान का निर्णय अब संभव नहीं है क्योंकि उसके बाद कई प्राकृतिक आपदायें आईं, ज्वालामुखी के कई बार विस्फोट हुए तथा आठ बार जल-प्रलय की घटनायें घटीं। अतएव, हम अर्वाचीन संदर्भो का उल्लेख करेंगे। विंध्यवासिनी का विग्रह आज भी गंगातट पर ही अवस्थित है जो काले पत्थर का है। भगवती सिंह पर खड़ी चतुर्भुजा है ज़िनकी दाईं ओर गणपति तथा बाईं ओर एक

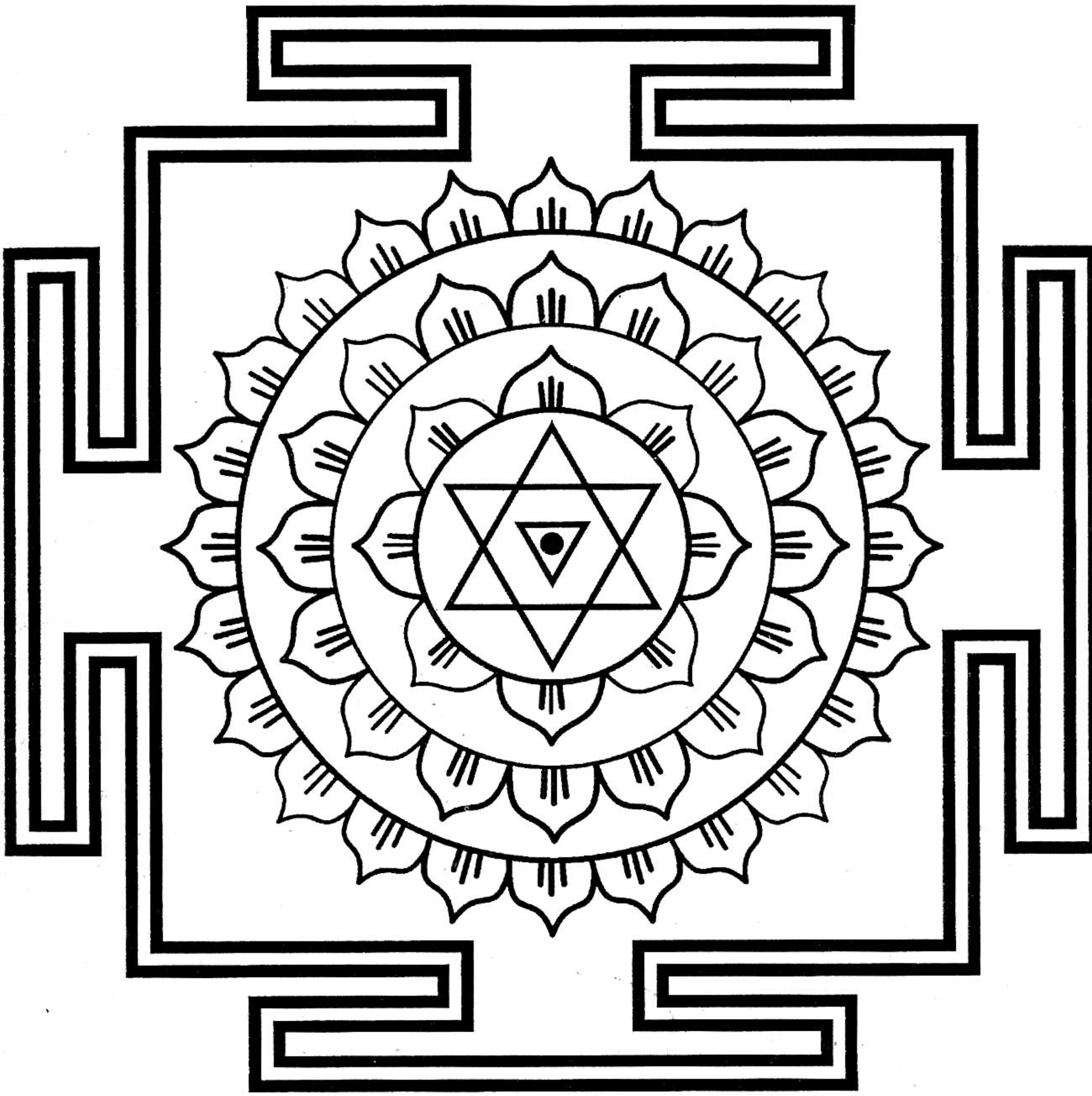

माँ विन्ध्यवासिनी यंत्र

इस यंत्र में बिन्दु, त्रिकोण, षटकोण, अष्टदल कमल, षोडशदल, चर्तुविंश कमल एवं भूपुर होता है। यंत्र को सुन्दर उत्कीर्ण करें तथा कमलों को सुन्दर निर्मित करें प्रत्येक दल एक दूसरे से सटा हुआ एवं समान होना चाहिए। षटकोण के सभी किनारे वृत को स्पर्श करें ऐसा यंत्र का निर्माण करें।

यंत्रोद्धार :

बिन्दुस्त्रिकोणं षट्कोणं वृत्तमष्टदलं तथा
षोडशारं ततः पश्चात् चतुर्विंश दलं ततः।
भूपुर द्वार सहितं महायंत्रं प्रकीर्तितम्,
विन्दौतु संस्थितां देवि ब्रह्मरुपेण सर्वदा।।

योगिनी हैं। यह मूर्ति भी अतिप्राचीन है। योगिनी तंत्र के विंध यवासिनी का विग्रह 'कृष्णा-रक्ता च याशिला' से लगता है कि सिंदूराप्लावित कृष्ण प्रस्तर की प्रतिमा रही होगी तथा किसी विशेष रक्त कृष्ण वर्ण प्रस्तर की प्रतिमा रही होगी। वहीं देवी की पूजा में कमल पुष्प ग्रहण करने का विधान था, **'विंध्येशी -सा समाख्याता प्रयनेत कमलादि चन'**। इस प्रकार की एक प्रस्तर प्रतिमा आनंदमयी आश्रम के पार्श्व में पंचवटी में स्थित है जिसकी अब पूजा होती है तथापि जनश्रुति के अनुसार पहले इसी विंध्यवासिनी के विग्रह की पूजा होती थी जो खंडित प्रतिमा के कारण संभवतः वर्षो से नहीं होती है, विंध्यवासिनी के अनेकानेक विग्रहों का वर्णन विभिन्न संदर्भ ग्रंथों में आया है। विष्णुयामल में उनकी सर्वात्मिका, एवं आद्यास्वरूप का वर्णन आया है जहां उनका वर्ण श्वेत है तथा चतुर्भुजी हैं जो सभी देवी-देवताओं द्वारा पूजित होती हैं तथा ब्रह्मानंद स्वरूपिणी सर्वसिद्धिदा हैं,-**"आदिरूपमहामायां ध्यायेत विंध्य-निवासिनीम्"**। वहीं एक स्थान पर उन्हें परमैश्वर्य दात्री के रूप में - **'नवयौवन सम्पदां त्रिनेत्रां च चतुर्भुजां'** कहा गया है किन्तु सिंह के वाहनरूय में नहीं दिखाया गया है तथा **'विंध्येर्शी विष्णु पूजितां'** कहा गया है। शारदा तिलक में यहां सिंहारूढ़ भगवती का वर्णन मिलता है जो कमलासना हैं तथा अष्टभुजी हैं। हरिवंश पुराण में इन्हें सिद्धि, धृति, मेधा, श्री विद्या, नारायणी, संध्या, रात्रि, कालरात्रि, आर्या, कात्यायनी, कौशिकी, त्रिलोक-जननी, नीलकौशेयवासिनी अनेक नाम से अलंकृत करते हुए घंटानिनाद बहुला भी बताया गया है। महाभारत के विराट पर्व में देवी को चतुर्भुजा, चतुर्वक्त्रा, उदीयमान सूर्य की तरह अरूणाम पूर्ण चन्द्रनिभानना, मयूर पिच्छल का वलय, केयूर, आंगद, कुंडल, श्रोणि, सूत्रादि आभूषण से अलंकृत, आयुधों में पाश, धनु, चक्र, अभय धारण करने वाली त्रैलोक्य रक्षार्थ विंध्याचल में शाश्वत रूप से विद्यमान रहती हैं। इन्हें गजारूढ़ा भी कहा गया है। जो भी हो वर्तमान विग्रह का विश्लेषण करने पर भी इसकी प्राचीनता महाभारतकालीन होने के कारण ५ हजार से १० हजार वर्षो के बीच की लगती है जिसका अन्वेषण पुरातत्वविदों को करना चाहिए। विग्रह भेद से उनके रूप निम्न प्रकार के हैं–

(१) शूलिनी, अष्टभुजी तथा शूल, बाण, असि, गदा, चाप, पाश तथा वराभय, मुद्रा धारण करने वाली भीषण-बक्त्रा, चन्द्रखंडयुक्त किरीट धारिणी तथा सिंहस्कंधारूढ़ा हैं। महिषमर्दिनी के रूप में ये अष्टादश भुजी हैं तथा सिंहारूढ़ हैं, अनेकानेक अलंकारों से युक्त हैं। वनदुर्गा के रूप में चतुर्भुजा देवी, इंद्रकला मंडित, अंगदहार कुंडलाभिभूषिता इन्द्रादि देवों से परिसेव्यमान शंखचक्र वर अभय मुद्रा युक्त कमलासना हैं। देवी अपने तीनों ही विग्रह में वैष्णवी शक्ति हैं और दुर्गा सप्तशती में **'त्वं वैष्णवी शक्ति अनन्तवीर्यां'** यह कर उनकी स्तुति की गई है। त्रिगुणात्मक वैष्णवी शक्ति होने के कारण सभी शाक्त मतावलंबियों की इष्ट देवी तथा पूजिता हैं विंध यवासिनी। भगवती को अर्पित करने योग्य भोग भी वैष्णवाचार के अंतर्गत है। नारियल, लाचीदाना, मिष्ठान, कलावा, सिंदूर, रोली, इंगुर, चुन्दरी, पुष्पों में पाटल, जावा तथा कमल इन्हें विशेष प्रिय हैं। बलिप्रथा तांत्रिकों के वाममार्गीय साधकों के द्वारा पहले बहुप्रचलित था, किन्तु वैष्णवी शक्ति को यह अभीष्ट नहीं है। अब नही के बराबर बलि प्रथा रह गई है।

त्रिकोण परिक्रमा विंध्यवासिनी दर्शन का एक अनिवार्य अंगा है। पहले पंचकोसी परिक्रमा का भी विधान था जो अब नहीं के बराबर लोग करते हैं। त्रिकोण परिक्रमा के पूर्व विंध यक्षेत्र में स्थित भगवती के तीनों विग्रह का संक्षिप्त ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है। विंध्याचल के समीपवर्ती क्षेत्र को विंध यक्षेत्र कहा जाता है। यहां विंध्यवासिनी देवी के मंदिर के अतिरिक्त काली खोह स्थित महाकाली का तथा सीताकुंड के समीप अष्टभुजा (महासरस्वती) का मंदिर है। देवी भागवत में स्वयंभुवमनु द्वाराप्रतिष्ठित महालक्ष्मी का विग्रह त्रिकोण के भी गंगातट पर अवस्थित मुख्य है। यहीं पर पार्वती गंगा स्नान करती हुईं देवताओं की विपत्ति सुन कृष्णवर्ण की हो गईं तथा कौशिकी नाम से विख्यात हुईं, फिर मधु-कैटभ का वध करने वाली तथा महिषासुर का वध करने वाली भगवती महालक्ष्मी के रूप में विराजित हैं। मन्वन्तर भेद से कथा भेद होता रहा है। चंडमुंड का वध करने वाली, रक्तबीज का रक्त पान करने वाली महाकाली जी का मंदिर काली खोह में स्थित है जो विंध्याचल से ५ किलोमीटर दूर गेरूआ पहाड़ के निकट है। देवताओं की स्तुति से प्रसन्न भगवती ने देवताओं को वर मांगने को कहा–

वरदाहं सुरगणावरं यन्मसेच्छथ ।
तं वृणुस्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ।।

वैवस्वत मन्वन्तर के २८वें युग में शुम्भ-निशुम्भ का वध करने वाली विष्णुरूपा योगमाया ही अष्ट भुजा हैं जो सीताकुंड

के पास महासरस्वती के रूप में अवस्थित हैं। इन विग्रहों के रूप अर्चनादि में मन्वन्तर भेद से कथाभद हुआ है, लेकिन सुधि-साधकों की इन्हीं तीन रूपों में तीनों विग्रहों की उपासना करनी चाहिए-महालक्ष्मी, महाकाली एवं महासरस्वती। त्रिकोणपरिक्रमा में इन्हीं त्रिकोणस्थ तीनों देवियों की यात्रा तथा पूजा-अर्चना कर पुनः विंध्यवासिनी महालक्ष्मी से आज्ञा लेकर विंध्याचल छोड़ना चाहिए। मेरा अनुभव है कि बिना आज्ञा प्राप्त किए विंध्याचल छोड़ने से किसी-न-किसी प्रकार से साधक का अहित हो ही जाता है। विंध्यवासिनी के भैरव है विश्वेश्वर विश्वनाथ। अस्तु, देवी के दर्शन के पूर्व या पश्चात् वाराणसी जाकर भी विश्वनाथ का दर्शन पूजन करनाा चाहिए तथा काल भैरव एवं सिद्ध विनायक जी का भी दर्शन पूजन करना चाहिए। यही शास्त्र सम्मत पूजा अर्चना है अन्यथा मनोरथ पूर्ण होने में बाधायें ही बाधायें आती हैं ऐसा मेरा अनुभव है। ऐसी धारणा है कि विंध्यक्षेत्र में मा विंध्यवासिनी सदैव ही विभिन्न रूपों में विचरण करती रहती हैं और सौभाग्यशालियों के उनके दर्शन अवश्य हो जाते हैं-कभी कन्या रूप में, कभी गौरूप में, कभी भिक्षुणी तो, कभी माता, कभी नवयौवन सम्पन्न अभिजात्य कामिनी के रूप में, मगर पहचान पाना शायद ही संभव हो। अतएव, विंध्यवासिनी के दरबार में जायें तो पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ तथा अपना अन्तर्बाह्यय भाव निर्मल, शुद्ध, पवित्र रखें क्योंकि कलुषित चित जाने से भगवती वरदानी नहीं रह जातीं तथा दंड विधान भी रच डालती हैं। किसी भी स्त्री के प्रति कामासक्त भाव न रखें विंध्य-परिक्रमा में।

विंध्यपीठ की त्रिकोण यात्रा का सर्वाधिक महत्व है और एक त्रिकोण परिक्रमा को सहस्त्र चंडीपाठ के तुल्य माना गया है। त्रिकोण परिक्रमा के मार्ग में अनेक सिद्ध स्थल हैं जहां बैठकर पूजा, पाठ, जप, अनुष्ठान कर मनोरथ लाभ किया जा सकता है। देवी के मुख्य मंदिर अद्योमुख त्रिभुज का शीर्षकोण मानकर यात्रा प्रारंभ की जाती है। गंगा स्नान कर विंध्यवासिनी मंदिर में महालक्ष्मी का दर्शन कर मंदिर प्रांगण में स्थित देवी-देवताओं का दर्शन करते हुए जयपुरिया धर्मशाला मार्ग पर विंध्येश्वर मंदिर स्थित है। वहां से चलकर संतोषी देवी, बटुक भैरव और हनुमानजी के दर्शन करने से महालक्ष्मी का त्रिकोण पूरा होता है, रेलवे स्टेशन पार कर कुमुद हनुमान का दर्शन कर काली खोहस्थ 'महाकाली जी' का दर्शन पूजा करना चाहिए। वहां अमृत कूप का जल पीकर सीढ़ियों द्वारा ऊपर चढ़ना चाहिए जिसके बाईं ओर भूतनाथ तथा दाईं ओर ब्रह्माजी है। ऊपर पहुँचकर दाईं ओर शिव मंदिर है तथा आगे मार्ग पर बाईं ओर महायोगिनी रूपा कामाख्या देवी, क्षेत्र पाल, गणेश, बटुक भैरव सहित स्थित हैं। इसी स्थल से आगे बढ़कर एक मार्ग नीचे की ओर जाता है जो ऋषियों की समाधि से होता हुआ जाता है। यह क्षेत्र चितवा खोह के नाम से विख्यात है और यहीं पर कौलमार्गी परम वैष्णव साधकों का आश्रम है। अवधूत आश्रम जो शिवा शिवसमूह के साधकों के द्वारा निर्माणाधीन है। बघरा ग्राम पहुँचकर एकदंत गणेश, सप्त सरोवर और प्रतापभानु का टीला है। पश्चिम की आरे 'नन्दजा' का स्थान है। १० किलोमीटर पश्चिम शिव खोह स्थित गुफा में रावण एवं मेघनाथ ने नवार्ण यंत्र की सिद्धि की थी, इस स्थल से कुछ दूर भ्रामरी देवी का स्थान है। आगे मोतिया तालाब और रावण की तप स्थली है। यहीं रावण ने शिव का पंचाक्षर मंत्र सिद्ध किया था। यहां से सीताकुंड जाकर जल पीकर थोड़ा विश्राम कर अष्ट भुजा का दर्शन करें जो महासरस्वती के रूप में पूजित हैं। भगवती के दायें पार्श्व में एक गुफा द्वार है जिसे बंद कर दिया गया है। बाईं ओर पातालपुरी की सिद्ध काली जी हैं। सीढ़ियों से नीचे उतरते समय अनेकानेक मंदिर हैं। यहीं भैरवकुंड है जिसका जल पीने से उदर रोग नहीं रहता। आगे चलकर मत्स्येन्द्र कुंड तथा गोरख कुंड है जिसका जल पीने से वायु विकार तथा रक्ताचाप का शमन होता है। उसके आगे मंगला गौरी का मंदिर है। त्रिकोण चलते हुए जी.टी. रोड पार करने पर रामेश्वरनाथ का मंदिर है। नन्दी तथा उत्तर में नन्दी के पीछे दक्षिणाभिमुखी श्मशान-तारा का मंदिर है। वापस चलने पर त्रिकोण परिक्रमा पूरी करते हैं। इस प्रकार त्रिकोण षट्कोण यात्रा पूरी कर पुनः मुख्य मंदिर में मां की आज्ञा पाकर विंध य क्षेत्र छोड़ सकते हैं। श्रद्धा, विश्वास, भक्ति एवं समर्पण भावना से जल-थल-नभ में विराजमान मां भगवती विंध्यवासिनी की कृपा प्राप्त कर धन्य-धन्य होकर जायें।

स्फोट ब्रह्म: नाद से अस्तित्व

अभी तक विज्ञान मानता आया है कि ब्रह्मांड की उत्पति वैद्युतिक ऊर्जा से हुई जो भी दृश्यमान जगत् है वह विद्युतीय शक्ति का खेल है और इस खेल का अंत भी वैद्युतिक ऊर्जा के विघटन के फलस्वरूप होगा। सृष्टि और संहार दोनों ही परिणाम हैं वैद्युतिक ऊर्जा के संघटन और विघटन के कारण अर्थात् सृष्टि की मूल ऊर्जा विद्युत है। ब्रह्मांड का मूल तत्व है विद्युत । पौराणिक वाङ्मय तथा वैदिक ऋषियों ने प्रतिपादित किया कि सृष्टि का मूल उपादान ध्वनि है, विद्युत नहीं वरन् विद्युत भी ध्वनि का रूपान्रतण है। ध्वनि ही मूल ऊर्जा है जिसका रूपान्तरण आवश्यकतानुसार अन्यान्य ऊर्जाओं में होता रहता है। सृष्टि के अंत में समस्त भौतिक शक्तियां पुनः उसी में लयगत हो जायेंगी । इसी प्रक्रिया को स्फोट विज्ञान कहा गया है। ध्वनि विस्फोट के फलस्वरूप विद्युत और प्रकाश के संयोग से ब्रह्मांड अस्तित्व में आया । आधुनिक विज्ञान अब अपनी खोज के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँच रहा है कि भारतीय ऋषियों ने जो मिथक और आख्यायनों के माध्यम से जो आलंकारिक विवरण दिया है सृष्टि की उत्पति के संबंध में वह कोई कोरी कल्पना नहीं। उसमें चिरंतन सत्य का संकेत है। ध्वनि ही अपनी तीव्रता खोकर विद्युत ऊर्जा में रूपान्तरित हो जाती है ओर फिर सृष्टि का उपक्रम आरंभ हो जाता है।

आकाश ही प्रथम तत्व है जिसे महत् तत्व भी कहते हैं। आकाश में ही संपूर्ण ब्रह्मांड अवस्थित है। इससे ही अन्य सृष्टि के उपादान स्वरूप तत्व आविर्भूत हुए। अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी। पृथ्वी सबसे स्थूल एवं अंतिम है और इसका गुण है गंध, जल का मूल गुण रस है किन्तु पृथ्वी तत्व के संयोग से गंध भी उसमें समाविष्ट हो जाता है। वायु का मूल गुण स्पर्श, लेकिन अन्य तत्वों से संबंध होने पर उसमें गंध, रस स्पर्श तीन गुण संयुक्त हैं। अग्नि का मूल गुण है रूप किन्तु अन्यान्य तत्वों के संबंध होने पर उसमें गंध, स्पर्श, समाविष्ट हो जाते हैं, फिर आकाश का गुण है ध्वनि और ध्वनि स्फोट से ही नानारूपात्मक एवं गुणात्मक ब्रह् मांड का सृजन होता है। विश्व ब्रह्मांड के मूल में तरंगित शक्ति ही एकमात्र कारक तत्व है यह आज के वैज्ञानिक शोध से प्रमाणित हो गया है, किन्तु यह कोई नवीन धारणा नहीं है। भारतीय मनीषियों ने वेदों तथा शास्त्रों के माध्यम से पर्याप्त प्रकाश डाला है। योगतंत्र विज्ञान ने इस सत्य का उद् घाटन लाखों वर्ष पूर्व ही कर दिया है। ध्वनि और प्रकाश दोनों ही ब्रह्मांडीय भौतिक ऊर्जायें हैं तथा एक का दूसरे में रूपान्तरण होता है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया का भली-भांति ज्ञान भारतीय योग-विज्ञानियों को था तथा आज भी है। हमारे योगतंत्र के जो नाद और बिन्दु शब्द आये हैं वे निरर्थक नहीं है और सृष्टि का बड़े से बड़ा रहस्य इससे सुलझाया जा सकता है। नाद तत्व और बिन्दु तत्व उस परम तत्व के ही दो भौतिक उपादान हैं। नाद का अर्थ है ध्वनि और बिन्दु है प्रकाश अर्थात् विद्युत। नाद तत्व से बिन्दु तत्व का आविर्भाव होता है। इन दोनों की तरंगों का संचरण आकाश के माध्यम से होता है। आकाश का एक नाम नभ भी है और नभ का अर्थ होता है जिसमें नाद तरंगें चलती हैं अर्थात् ध्वनि तरंगों का संचरण होता है। इधर भी कुछ ऐसी ही व्याख्या भौतिकविद् करते हैं। आकाश ही अंतरिक्ष है जिसमें कोटि-कोटि ब्रह् मांड सृष्ट हैं। असंख्य ग्रहपिंड, नीहारिकायें एक दूसरे से तरंगों से संबंधित होती हैं। ध्वनि स्फोट से विद्युत ऊर्जा बनी और दोनों की तरंगों से आबद्ध एवं समृद्ध है यह पूरा का पूरा ब्रह्मांड और दोनों ही तरंगे एक दूसरे की विरोधी न होकर परिपूरक हैं और गोचर-अगोचर लोकों की स्थिति एवं अवस्थिति इनके तरंगों के आपसी समन्वय से निर्धारित होता है। ये दोनों तरंगे एक दूसरे की इतनी परिपूरक तथा अन्योन्याश्रित हैं कि पाश्चात्य भौतिकविदों ने प्रकाश किंवा विद्युत को मूल ऊर्जा माना, लेकिन अब वे भी इस बात से सहमत होने लगे है कि ध्वनि स्फोट ही विद्युत ऊर्जा को उत्पन्न करता है अर्थात् बिना ध्वनि के विद्युतीय ऊर्जा की कल्पना नहीं की जा सकती।

योग तंत्र का एक अतिप्राचीन ग्रंथ है-स्पन्दनकारिका जिसमें निष्पादित किया गया है कि विश्व का संपूर्ण अस्तित्व ग्रह पिंडों तथा नीहारिकाओं से निसृत ध्वनि तरंगों तथा ध्वनि संकेतों (स्पंदों) से अटा पड़ा है। इन दोनों में मौलिक भिन्नता है जिनके कारण इनकी गतियों में भी समानता नहीं है। स्पन्दनकारिका के अनुसार, ग्रह नक्षत्रों के विषय में लाखों

करोड़ों वर्षो का अध्ययन इन्हीं तरंगों तथा स्पन्दनों के आधार पर होता आया है तथा उनका प्रभाव पृथ्वी पर कितना और कैसा पड़ेगा इसका भी विवरण प्राप्त किया जा सकता है । इसी स्पन्दन विज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक साइमेटिक्स अर्थात् तरंग विज्ञान के नाम से परिभाषित करते हैं ।

इसके प्रथम प्रयोग के बारे में प्रख्यात भौतिकी विद अर्नेस्ट चाडनी ने अपनी पुस्तक Discoveries concerning the Theory of Music में इस प्रकार किया है कि ध्वनि तरंगों में विभिन्न प्रकार की ज्यामितीय आकारों की सृजन क्षमता होती है । उन्होंने विभिन्न तरंगों के प्रयोग से यह साबित कर दिया कि भिन्न-भिन्न तरंगों से भिन्न-भिन्न आकृत्तियां ध्वनिकंपन के कारण उभरती हैं । इन आकृत्तियों को चाडनी फिगर्स के नाम से जाना जाता है । इसके लिए उन्होंने वायलीन और रेत का प्रयोग किया । वायलीन की ध्वनि तरंगों द्वारा बालू पर विभिन्न आकृत्तियां स्वतः बनती गईं । फ्रांसीसी गणितज्ञ जूल्स लिसाजू ने भी प्रमाणित किया कि ६०° डिग्री के कोण पर जब असंख्य तरंगे विभिन्न दिशाओं से मिलती है तो विशिष्ट प्रकार की आकृत्तियां बन जाती हैं, जिन्हें लिसाजू की आकृत्तियों के रूप में जाना गया । उन्होंने यह भी प्रतिपादित किया कि तरंगों में परिवर्तन होने से आकृत्तियों में भी परिवर्तन हो जाता है अर्थात् विशिष्ट आकृत्ति के लिए विशेष आवृत्ति वाली तरंगें आवश्यक हैं । स्विस चिकित्सक और अनुसंधानकर्त्ता हैन्सडेनी ने एक यंत्र विशेष का निर्माण किया जिसे टोनोस्कोप कहा जाता है । इस यंत्र से किसी भी अक्षर,मंत्र, स्तोत्र को आकार रूप में प्रत्यक्ष किया जा सकता है, जो शब्द अब तक कर्णगोचर थे उनकी आकृत्ति भी देखी जा सकती है । हमारे तंत्र ग्रंथों में मातृकाओं का यही रहस्य है तथा उनकी आकृत्ति और शक्ति के संबंध में भी प्रकाश डाला गया है ।. विभिन्न प्रकार के पदार्थो को जब किसी कंपायमान प्लेट पर रखा जाता है तो दो तरह की आकृत्तियां उभर कर आती हैं । एकका रेखांकन तो व्यवस्थित एवं स्थिर होता है जबकि अन्य का गतिशील और विक्षोभकारी जिनकी संरचना में कोई व्यवस्था नहीं होती ।

इस प्रकार आधुनिक विज्ञान ने प्रमाणित कर दिया कि ध्वनि तरंगों में आकृत्ति-निर्माण की क्षमता हे; किन्तु यह द्विआयामीय ही होता हैं । जिसमें लंबाई-चौड़ाई तो होती है किन्तु मोटाई नहीं होती, जबकि सामान्यतया कोई भी पदार्थ त्रिआयामीय होता है इसी आधार पर क्वांटम कण की परिकल्पना आई जो तरंग का नाद स्वरूप प्राप्त करते ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित होकर समुच्चय रूप से व्यक्त, आकृति अर्थात् त्रिआयामीय सृष्टि कर देते हैं । इतने प्रकार के पदार्थो के संबंध में क्वांटम विज्ञानी कणों की सघनता और विरलता को कारणभूत मानते हैं । यह तो स्पष्ट ही है कि ध्वन्याकृत्ति एवं तरंग दैर्ध्य में या दोनों में आनुपातिक परिवर्तन से आकृत्तियों में भी परिवर्तन हो जाता है । क्वांटक कणों के किसी समुच्चय में जब और कण आकर मिल जाते हैं तो समूह

की पहले वाली आकृत्ति में परिवर्तन हो जाता है। इस परिवर्तन के कारण पूर्व की आकृत्ति बदल जाती है और नयी आकृत्ति का स्थूल रूप अभिव्यक्त हो जाता है। क्वांटम कण कोई वास्तविक कण नहीं है और न क्वांटम क्षेत्र कोई निर्मित क्षेत्र है, वस्तुतः कंपन और तरंग के आनुपातिक स्वरूप को अभिव्यक्त करने के लिए ये शब्द गढ़े गए हैं। यह एक प्रकार का वैद्युतिक क्षेत्र तथा विद्युत तरंग ही है जो ध्वनि के स्पंदन के फलस्वरूप अस्तित्व में आया। तंत्र की सगुणभूमि में दोनों ब्रह् मांडीय मौलिक ऊर्जाओं को शिव-शक्ति के रूप में अभिव्यक्त किया गया। पुरूष-तत्व स्थिति शील ऊर्जा का और स्त्री तत्व गतिशील ऊर्जा का परिणाम है। दोनों का संयोग काम शक्ति के रूप में सृष्टि के आविर्भाव का उत्पादक तत्व है। दोनों ऊर्जाओं द्वारा अमूर्त से मूर्त जगत् का निर्माण हुआ है और किस प्रकार यह दृश्यमान जगत् स्पर्श, रस, रूप, गंध और नाद का सम्मिश्रण लेकर उत्पन्न हुआ है इस पर भौतिकी वैज्ञानिक जो भी प्रयोग कर रहे हैं उनका निष्कर्ष योग एवं तंत्र विज्ञान की निष्पतियों से पूरी तरह सामंजस्य रखता है। दोनों ऊर्जाओं के आकर्षण एवं विकर्षण के फलस्वरूप तीन प्रकार की विद्युत चुंबकीय तरंगे उत्पन्न होती हैं जिन्हें हम इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और प्रोटॉन कहते हैं। इलेक्ट्रॉन तरंग तथा प्रोटोन विद्युत चुंबकीय तरंगे हैं, किन्तु न्यूट्रॉन विद्युत विहीन चुंबकीय ऊर्जा से युक्त तरंगे हैं। इन्हीं से तीन मौलिक शक्तियां आविर्भावित होती हैं-पावर, फोर्स और एनर्जी जिन्हें हम तंत्र में महासरस्वती, महाकाली और महालक्ष्मी के रूप में उपासना करते हैं और योग तथा तंत्र दर्शन में इन्हें ही वाक् शक्ति, प्राण शक्ति और मन शक्ति के आंतरिक स्वरूप का गठन होता है जिसके आनुपातिक अन्तर से उद्भूत है यह सारा विश्व, ब्रह्मांड और नाना रूपगुणात्मक गोचरागोचर पदार्थ। ध्वनि स्पंदन ही स्फोटकर विद्युत तरंगों को जन्म देती है फिर स्पंदन और तरंग दोनों में आनुपातिक क्रम से सृष्टि रचना होती है। नाद और बिन्दु के संयोग से सृष्टि है और सृष्टि नाद के सहयोग से प्रसारित और संकुचित होती है जिसे हम सृष्टि का प्रारंभ तथा प्रलय के चरम बिन्दुओं से अभिव्यक्त करते हैं। ओ३म् अनाहत ध्वनि है स्वतः स्फूर्त ध्वनि की अभिव्यक्ति किंवा सूत्र है। भारतीय प्रज्ञा के अनुसार संपूर्ण विश्व ब्रह् मांड और व्यक्त-अव्यक्त जगत् के अतिरिक्त गोचरागोचर सृष्टि तथा समस्त प्रकार के चेतन-अचेतन का एक मात्र आधार ध्वनि है और ये मूक ध्वनियाँ अ, उ, म् समान रूप से जीवन की संपूर्ण ब्रह् मांड में व्याप्त हैं, जिसकी अभिव्यक्ति परमध्वनि ॐ से सूत्रबद्ध किया गया। कुछ काल बीतने पर पाश्चात्य विज्ञान भारतीय प्रज्ञा की इस उपलब्धि के सामने विस्मयाभिभूत हो जायेगा कि ब्रह्मांड की उत्पति ध्वनि से हुई है।

योग-साधना से ही संभव है चेतना का उर्ध्वारोहण

आज मानव-समाज जिस अराजकता के चतुष्पथ पर खड़ा है कि उसे पता ही नहीं चलता कि वह किस मार्ग से अपने गंतव्य की ओर जाय । उसके चतुर्दिक अभाव, विवशता, अन्यमनस्कता, दिशाहीनता, आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष-लोभ तथा शत्रुता का वातावरण व्याप्त है । चापलूसों की जमात फूल फल रही है । वहीं मनस्वी व्यक्ति, दर-दर की ठोकरें खाने को विवश है। समूची मानवता युद्ध की आशंका से अपने अस्तित्व के प्रति सशंक है । बेरोजगारी, हिंसा, छीना झपटी से जूझ रहा मानव-समाज अपने भविष्य की त्रासदी को लेकर चिन्तित तथा व्याकुल है । उसकी भीतर की अन्तरात्मा मृत प्राय हो चुकी है और उसकी कराह भी मनुष्य अब सुन पाने की स्थिति में नहीं है । स्वार्थ लिप्सा से अतिरंजित हमारा जीवन स्तब्ध हो गया है, हम किंकर्तव्य विमूढ़ हो गए हैं । कोई मार्ग सूझता नहीं कि अधोपतन की ओर तेजी से जा रहे मानव समुदाय की रक्षा कैसे होगी । अपनी सभ्यता-संस्कृति की गरिमा की सुरक्षा हम कैसे करें ? ऐसा लगता है कि हमारी प्राचीन अवधारणाएं जिन पर हमारा भविष्य सुरक्षित रह सकता था, डगमगा गई हैं तथा उपहासास्पद बन गई हैं । हमारी सुरक्षा का मूलमंत्र विवेक जनित आचरण का लोप इतनी तीव्रता से हो रहा है और हम आसुरी संपदा के प्रति इतनी ललचाई दृष्टि से बढ़ रहे हैं कि अपना अस्तित्व स्वयं अपने हाथों से मिटाने को आतुर हैं तथा अपने में अवस्थित नर पिशाच का स्वागत करने के लिए आतुर हैं । उसे रोक नहीं पाते । उसका आलिंगन करने की तीव्र कामना से अभिभूत हो गए हैं । जातिवाद, सम्प्रदायवाद, पृथकतावाद का भूत हम पर इतना हावी हो गया है कि साम्प्रदायिक दंगे, जातिवादी उन्माद तथा अपनी सीमा रेखा का अनैतिक सिद्धान्तों का सहारा लेकर मरने कटने के लिए उतारू हो गए हैं । राजनीति और धर्म दोनों की पृथकता की वकालत करने वाले हमारे आधुनिक मनीषी कुतर्क का सहारा लेकर राजनीति और धर्म दोनों का ही नाश करने पर तुले हुए हैं । जीवन का स्वरूप और रहस्य का विनिर्धारण करने वाला तत्व ही राजनीति और धर्म है और दोनों का अब तक अन्योन्याश्रित संबंध मानकर जीवन दिशा निर्धारित नहीं की जाती तब तक मानवता सदा ही दानवता से प्रताड़ित होती रहेगी । यही संदेश हमारे पुराणों और शास्त्रों में उद् धृत है । यदि हम सद् असद् का निर्धारण अपने जीवन में नहीं कर पाते तब तक राजनीति और धर्म दोनों पर दानवी माया हावी बनी रहेगी और छोटे से छोटे स्वार्थ के लिए हम अपने बंधु-बांधवों को मार्ग से हटाने के लिए किसी भी कुकृत्य की हद पार करने में थोड़ी भी चिन्ता नहीं करेंगे । इस विषम परिस्थिति में आवश्यकता है कि हम अपने आदर्शों की समीक्षा करें और अपनी उपलब्धियों की आवश्यकता को समझें ।

विकृत बुद्धिवाद, सुखोपभोग की उदात्त लालसा एवं कामुकता के उन्माद से परिप्लावित जो आज का समाज है उसे विनष्ट होने से कैसे बचाया जाए, यह सोचना है । तात्कालिक

लाभ को प्रधानता देने वाला प्रत्यक्ष संवाद के स्थान पर धर्मनीति की कठोरता से व्यवहृत करने की आवश्यकता पर आज के मनीषी, संत-महापुरूष बल दे रहे हैं और तात्कालिक लाभ से मनुष्य की आक्रान्त चेतना का परिष्कार कैसे हो, इसका परिमार्जन कैसे किया जाए, इस पर चिं.न करने के लिए सचेष्ट हैं। बौद्धिक बल पर चिंतन की अतिरेकता, मनोविकारों सनकीपन तथा अनगढ़ महत्वाकांक्षाओं को दूर हटाने का मार्ग ढूंढा जा रहा है। चिंतन से चरित्र प्रभावित होता है और चारित्रिक निष्ठा ही नैतिकता है। भाव गरिमा के अनुरूप अपने दायित्वों का निर्वाह, शिष्टाचार और अनुशासन का समावेश व्यक्तिगत चरित्र में लाने से ही स्वस्थ समाज के नव निर्माण की दिशा प्रशस्त होगी। अपने अहंकार जनित महत्वाकांक्षाओं को सद् विवेक से समझना होगा और उसे प्राप्त करने के लिए नैतिक आचरण अपनाना होगा अन्यथा पतनोन्मुख मानव जाति का विनाश अवश्यंभावी है।

महामुनि पातंजलि ने अपने योग सूत्र में योग की परिभाषा चितवृति निरोधश्च कहकर अपनी वृतियों के अनुशीलन पर जोर दिया है। उपभोगवाद की जो संस्कृति पनप रही है उसे समझना होगा तथा उसका प्रतिकार करने के लिए मानव प्रकृति पर ध्यान देना होगा तभी जाकर चितवृत्तियों का निरोध संभव होगा। आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान समाधि से हटकर पहले हमें अपनी जीवन शैली में परिवर्तन लाने के लिए अपना जीवन संयमित करना होगा तथा अपने चरित्र परिवर्तन का प्रयास करना होगा। अभी तक तो हमारे अर्वाचीन विचारकों ने मानव-काया को जड़-चेतन तत्वद्वय से उद् भूत तथा निर्मित माना है। शरीर की स्वस्थता और सौदर्य को बनाए रखने के बहुत सारे प्रयास किए जा रहे हैं और जो सफल भी हो रहे हैं। चिकित्सा-विज्ञान के वरदान से हमारी औसत आयु बढ़ी है। मारक व्याधियों से सुरक्षा हेतु अभियान भी सफल हो रहे हैं। आहार-विहार की व्यवस्था रखकर भौतिक जीवन तो परिवर्तित हुआ है, किन्तु इसका उपयोग तो बस भौतिक उपलब्धियों के लिए किया जा रहा है। होना यह चाहिए कि 'सोई सुन्दर, सोई सुभग शरीर' जिससे चेतन तत्व को भी निखारा जाए। इस ओर हम पूरी तरह से अभावग्रस्त हैं। सुन्दर, सुभग शरीर का वरदान तो मिला मगर आसुरी सम्पदाओं की ओर लोलुपता में इसका उपयोग किया जा रहा है और हम दिन-प्रतिदिन असुर बनते जा रहे हैं। महिषासुर, शुंभ-निशुंभ, रावण, भस्मासुर आदि की तरह हम अपने कनक भवन में मदिरा सेवन, भक्ष्याभक्ष्य का आस्वादन, परनारी निरत हैं। व्याधियों के लिए तरह-तरह के साधन जुटा रहे हैं कि उनका निरोधकर अधिकाधिक सुखोपभोग करें, किन्तु जब शक्ति चूक जाती है, वृद्धावस्था आना ही है, रसायन व्यर्थ हो जाते हैं तो 'ततः किंततःकिं' कहते हुए हम कालकवलित होकर मरणेत्तर जीवन में नाना प्रकार के कलेश भोगते है और विरासत में दे जाते हैं अन्तहीनव्यथा और वेदना की थाती। पाश्चात्य प्रभाव में आकर हम अपने चेतन व्यक्तित्व को सुन्दर तथा संवेदनशील बनाने की ओर ध्यान नहीं देते हैं। इस ज्ञान के अभाव में मानव जीवन के द्वारा प्राप्त उपलब्धियों की महनीयता और गरिमा से हम वंचित रह जाते हैं।

मानव अस्तित्व के तीन स्तर हैं–स्थूल, सूक्ष्म और कारण। यह जो स्थूल शरीर है उससे ही अकेले जीवन निर्मित नहीं होता। पातंजलि मुनि ने इन तीनों शरीरों के परिष्कार का जो मार्ग बताया है उसका अनुसरण कर ही मानव जीवन का उदात्तीकरण संभव है। स्थूल शरीर से हम स्थूल क्रियायें करते हैं जैसे चलना-फिरना, सोना-जागना, जैसी अन्यान्य शारीरिक क्रियाओं के साथ-साथ जीविकोपार्जन के लिए भाग-दौड़ शुभाशुभ कर्मो का संपादन, इन्द्रिय जनित सुखों का आनन्द प्राप्त करना इसी स्थूल शरीर से संभव है।

इसके भीतर एक और शरीर है जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं और जिसका निर्माण मन, बुद्धि, चित तथा अहंकार से होता है। विचारणा, प्रतिभा, स्फूर्ति, आकांक्षा, अभिरूचि, वेदना जैसी मानसिक क्रियायें इसी शरीर के फलस्वरूप होती हैं। स्थूल शरीर के चतुर्दिक जो आज का निर्माण होता है जिसके आधार पर किसी भी व्यक्ति के पूरे व्यक्तित्व का मूल्यांकन करना संभव है वह इस सूक्ष्म शरीर का बाह्यावरण है। इसका प्रधान केन्द्र मस्तिष्क है। तीसरा शरीर जो आत्मा के सर्वाधिक निकट है अथवा जिसमें आत्मा निवास ज्योति स्वरूप में रहता है वह कारण शरीर है। इसमें उच्च्व स्तरीय दिव्य चेतना का साम्राज्य है। इसी में मानवीय संवेगों का स्फुरण होता है और हमारी दिव्य भावना में दया, करूणा, प्रेम, धर्म, कर्तव्यबोध, संयम जैसी मनोवृत्तियों को आभास देती हैं। जिसे सूक्ष्म शरीर समझता है और स्थूल शरीर को संकेत देता है। इसी शरीर में प्रायः लोभ, ईर्ष्या, काम का भी उन्मेष होता है और विवेक शून्य होकर सूक्ष्म मन का संकेत पाकर दुरात्मायें

नर पिशाचों की तरह क्रियाशील हो उठती हैं। हम सामाजिक मान्यताओं तथा नैतिक आचरण की ओर संज्ञाशून्य बनकर ऐसा कुछ कर गुज़रते हैं जिनका उल्लेख मानव इतिहास के कलंक के अध्याय के रूप मे जाना जाएगा। हमारे शास्त्रों, पुराणों में इस तरह के आख्यान भरे हुए है कि महातपस्वी भी सिद्धियां पाकर, जो उनके कठोर साधना एवं नियम निष्ठा के कारण उन्हें प्राप्त हुई थीं, ऐसा दानवी और क्रूर कर्म कर चुके हैं जो उनकी तपोद्रनित उपलब्धियों पर पानी फेर देते हैं। अपनी कुवृतियों के परिमार्जन में सदा ही मनुष्य को सजग रहना चाहिए। रामकृष्ण परमहंस प्रतिदिन एक ही पीतल का लोटा मांजते रहते थे कि उसकी चमचमाहट कभी धूमिल नहीं होती थी। इस चमचमाते लोटे को प्रतिदिन मांजने के रहस्य पर किसी ने पूछा तो परमहंस देव ने कहा कि बेटा मन भी ऐसा ही हैं। इसे जब तक रोज मांजा न जाए तो थोड़ी धूल तो जम ही जाएगी। इसी प्रकार अपने मन का परिमार्जन करते रहना चाहिए। तीनों शरीरों का संक्षिप्त विवरण इसलिए दिया गया कि मनुष्य अपने मन की गतियों को समझ सके। इनके वर्णन का उद्देश्य है कि हमें अपनी प्रवृतियों के मूल उत्स को समझना चाहिए तथा तीनों को ही देवोमय बनाने का प्रयास करना चाहिए। तीनों शरीर एक दूसरे से इतने घनिष्ठ हैं कि किसी एक में भी विकृति आने से तीनों ही प्रभावित हो जाते हैं। हमें अपने में देवत्व के विकास के लिए अपने तीनों ही शरीर को दिव्य भावनाओं से परिपूर्ण रखना होगा तभी मानव जीवन को नई दिशा, नई प्रेरणा और क्रियाशीलता के नए आयाम उपलब्ध हो सकेंगे। उपासना से स्थूल शरीर के प्रति दिव्य भावना करनी पड़ती है तथा दिव्य संकेत उपासना के माध यम से स्थूल शरीर को मिलता है। साधना की यह प्रारंभिक क्रिया है। दिव्यजीवन के लिए संकल्पित आत्माओं के लिए उपासना से ही अपना कार्यक्रम शुरू करना पड़ता है। शिवा-शिव समूह ऐसी दिव्य चेतना को उभारने का प्रयास है। आने वाले समय में यही उर्ध्व चेतना आत्मायें मानवता को विनाश के कगार से खींच लाने में सक्षम होगी। अतएव, दिव्य चेतना से समाविष्ट शिवा-शिव संमूह की संकल्पित आत्मायें उपासना से अपना जीवन प्रारंभ करेंगी। समय-समय पर इनका पर्व एवं उत्सव इसीलिए मनाया जाता है कि वे सामूहिक अनुशासन में रहकर सहकारिता-सहयोग की भावना रखते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम् ' के आर्ष परिकल्पना को दिखा दे सकने में समर्थ हो सकेंगे। उच्चतर साधना में प्रविष्ट होने के पूर्व उपासना के क्रम को अभ्यास में अनवरत लाकर इसे अपना स्वभाव बना लेना हैं। भजन-पूजन से मन की धारा अन्तर्मुखी होने लगती है और सांसारिक चेतना के प्रति अपने कर्तव्यबोध का आचरण करते हुए उसके उन्नयन के प्रति सचेष्ट हों, उपासना करते करते सदाचरण का पालन करते हुए समस्त सृष्टि एक में ही चिन्मय तत्व का बोध-इष्ट के माध्यम से प्राप्त हो जाये। परमात्मा ने ऐसा कोई शरीर नहीं दिया है जो उसकी उपासना के योग्य न हो। ऐसा कोई प्राणी नहीं जो शिव संकल्प को अपने में विकसित न कर सके। इसमें जाति, धर्म, रंग, लिंग के आधार पर विभेद करने की कोई प्रयोजनीयता नहीं है। जब उपासक उर्ध्वचेता बनता है तो उसके आसपास का वातावरण भी अनुशासित होकर वैरभाव त्यागकर दया, करूणा, परोपकार की भावना से ओत प्रोत हो जाता है। सारे कर्म इस निष्कर्ष पर एकमत हैं कि उर्ध्वचेता व्यक्ति के आसपास जो प्रभा मंडल निर्मित होता है उसके प्रभाव से वहां के वातावरण में हिंसा, घृणा, राग-द्वेष, कामुकता आदि मनोविकार जड़-चेतन किसी में भी नहीं रह जाते है। उपासना में दत्तचित्त होकर हम ऐसे ही व्यक्ति का निर्माण करें। वह प्रारंभिक शिक्षा है जिससे भविष्य में व्यक्तित्व का उन्नयन चरम पर संभव हो सकेंगा।

फिर साधना उच्चस्तरीय प्रशिक्षण की तरह काम करती हैं। इसमें चक्रभेदन, चक्रार्चन, धारणा, ध्यान तथा समाधि की उपलब्धि होती है और हमारा व्यक्तित्व पूर्ण विकसित कमल दल की तरह प्रस्फुटित हो जाता है। उसकी सुरभि दि्गदिगन्त में व्याप्त होने लगती है। माया से ब्रह्मभाव में हमारी अवस्थिति हो जाती है और हमे व्यक्ति न रहकर ब्रह्ममय बन जाते हैं। ईश्वर के साथ हमारा नित्य अहेतुकी संबंध विनिर्मित हो जाता है। ईश्वर स्मरण और सान्निध्य से जुड़ना ही साधना की पूर्णता है। उसके बाद हम स्वयं ब्रह्ममय होकर ईश्वरत्व की प्राप्ति कर लेते हैं और अपने संकल्प मात्र से मानव समुदाय का ही नहीं संपूर्ण सृष्टि को निश्चित तथा वांछित दिशा दे सकते हैं। मनोवृतियों को वासना-तृष्णा से विरतकर संयम परमार्थ में नियोजित कर सकते हैं। साधनापथ पर जितना ही हम आगे बढ़ते जाते हैं उतना ही ईश्वरीय संकेत हमें मिलता रहता है तथा हमारी दिव्य भावना के आलोक में मन ज्योतिर्मय हो उठता है। ऐसे महापुरूष की भी दो कोटियां हैं–कर्मयोगी और ज्ञानयोगी। कर्मयोगी के लिए सहज, सुगम और सौम्यपद्धति

तथा निष्काम भाव से स्वकर्म में नियोजित हो जाने वाला चित्त। ऐसे कर्मयोगी ही आध्यात्मिक वैचारिक क्रान्ति को मूल रूप दे सकेंगे। दूसरी कोटि है तपश्चर्या निरत विशिष्ट साधकों की जो वैचारिक क्रांति के सूत्रधार होंगे। उनके एकाश्वास, असाधारण मनोबल सम्पन्न, हठयोग, षट् चक्रभेदन, कुंडलिनी योग की दक्षता तथा तंत्र योग में निष्णात साधणा। ये लोग ही वैश्विक सूक्ष्म शरीर को संकेत देंगे जिनके आधार पर कर्मयोगी सद् गृहस्थ रहकर जीवन की विभिन्न धाराओं यथा, विज्ञान एवं अध्यात्म से सांस्कृतिक जीवन को समृद्ध करेंगे। यह मार्ग निश्चय ही लुभावना है तथा इसकी प्रक्रिया में अवरोध ही अवरोध हैं, प्राणों का भय भी कभी-कभार आ जाता है। इसमें ऋद्धि-सिद्धियां तो उपलब्ध होती ही हैं, चमत्कार-प्रदर्शन की क्षमता भी आ जाती है। किन्तु, साधना की अंतिम परिणति समाधि उपलब्ध होने तथा इस मनोवृति पर अंकुश लगाए रखना अनिवार्य है। इसकी आकांक्षा मात्र अहंकार को बढ़ावा देंगी और पुनः हमें नीचे की धरातल पर लेकर चली जाएंगी तब हम साधारण सरल मानव भी न रह सकेंगे। शुंभ-निशुंभ, रावण, महिषासुर, हिरण्यकश्यप, हिरण्याक्ष की तरह उन्मत्त हो उठेंगे और मानव से दानव बन जाएंगे। इस प्रवृति पर पर्याप्त अंकुश लगाए जाने की आवश्यकता है और इसीलिए सर्व सामर्थ गुरु अपनी इच्छा से शिष्य में शक्ति संचरण करते हैं तथा उसकी साधना को नियंत्रित रखते हैं। इससे कभी-कभी शिष्य गुरु से विमुख हो जाते हैं। सद् गुरुशिष्य की कल्याण कामना ही करते हैं और उसकी इच्छा से उसे शक्ति प्रदान नहीं करते उसकी पात्रता देखकर ही आगे बढ़ाते हैं अन्यथा उसके प्रति विरक्त हो जाते हैं और साधक की साधना वहीं रूक जाती है। सभी तंत्र-मंत्र में गुरु का स्थान इसीलिए सर्वोपरि बताया गया है। वैचारिक क्रांति की आवश्यकता है आज, अतएव ज्ञान यज्ञ में अपनी आहूति देने के लिए तत्पर हो जाना है, तैयार हो जाना है। जनमानस में परिवर्तन लाकर ही हम विश्व का मंगल कर सकते है। दुख-दारिद्रय अभावग्रस्त मानव जीवन को आध्यात्मिक संपदा की आवश्यकता है और साधना के सभी आयामों से परिचित होकर निष्णात बनाने की आकांक्षा लेकर आना है, आत्म कल्याण और वैश्विक कल्याण की मंगल भावना लेकर हमें इस ज्ञान यज्ञ को पूर्ण करने का संकल्प लेना होगा। कर्म योग और ज्ञान योग में भक्ति का तत्व सम्मिलित करना होगा। भक्ति के बिना माया से मुक्त होना संभव नहीं। अतएव, बिना भक्ति के, योग के ज्ञान और कर्म दोनों ही अधूरे हो जाते हैं। उनसे विश्व का कल्याण संभव नहीं है। हाइड्रोजन और आक्सीजन के संयोग से जल निर्मित करने के लिए एक तीसरे तत्व की आवश्यकता होती है और वह है विद्युत्। भक्ति, विद्युत है तभी कर्म और ज्ञान चाहे जिस पथ से भी आप जायें अपना तथा विश्व का कल्याण कर पायेंगे।

भक्ति के तादात्म्य से ही पग-पग पर आप अपनी मंगल कामना बिखेरते चलेंगे। करूणा, प्रेम, सहानुभूति, उदारता, सहृदयता का उत्स भक्ति से ही उत्पन्न होगी, जिससे आपका योगयुक्त संस्कारित जीवन विश्व कल्याणार्थ प्रयुक्त हो सकेगा। यदि थोड़ा समय दें और थोड़ा धन हर व्यक्ति दे तो हम एक ऐसा संगठन निर्मित करना चाहते है जो कर्म, ज्ञान और भक्ति की त्रिवेणी का संगम बन जाए और विश्व कल्याण के यज्ञ में संपूर्ण विश्व की भागीदारी हो सके। अपने परिवार का पालन-पोषण भी हम इन्हीं आधार पर कर एक सर्वकल्याणकारी यूनिट का निर्माण कर पायेंगे। अपनी समस्त उपलब्धियों को विश्वहित में अर्पित कर देना ही सच्ची साधना है। लोकमंगल हेतु परमार्थ परायण व्यक्ति ही अपना सर्वस्व ईश्वर के चरणों में समर्पित कर सकता है। वासना तृष्णा से सर्वथ विरत, निर्मल निश्चिंत अन्तःरकरण वाला व्यक्ति ही भक्ति योग का अधिकारी है और उससे जो भी होगा वह समस्त मानवजाति के लिए ही नहीं समस्त जगत् के लिए मंगलकारी ही होगा। सभी ऋषि-मुनियों ने इसी भावभूमि पर आरूढ़ होकर ईश्वर दर्शन, आत्म-साक्षात्कार किया तथा परमानंद की स्थिति में बने रहे चाहे वे सुर, तुलसी, वाल्मीकि, ध्रुव, प्रहलाद, मीरा, चैतन्य, ईसामसीह, गुरुनानक, मोहम्मद साहब जैसे विशिष्ट आत्मायें ही क्यों न हों। उनकी विशिष्टता उनकी विश्व की कल्याण कामना में छिपी हुई है बहुत जनहिताय, बहुजन सुखाय उन्होंने अपना मानवतन अर्पित करने में कभी मीन मेख नहीं किया। स्थूल शरीर का कर्मयोग से, सूक्ष्म शरीर का ज्ञान योग से और कारण शरीर का भक्ति योग से परिष्कार-परिमार्जन कर तीनों शरीर से त्रिविध साधना कर अपने निर्मल अन्तःकरण में ईश्वर सान्निध्य साक्षात्कार ही हमारे जीवन का उद्देश्य होना चाहिए।

▲ ▲ ▲

शिवा-शिव समूह समाचार

शिवा-शिव समूह दिव्य भावापन्न कौल साधकों का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है जिसमें ऐसे सभी व्यक्तियों का स्वागत है जो आदर्श संयुक्त कर साधक के रूप में जीवन-यापन करना चाहते हैं। सद्गृहस्थ तथा सन्यासी दोनों ही प्रकार के लोगों को उनके संस्कारानुसार दीक्षा से सम्पन्न कर उन्हें आध्यात्मिक साधना तथा आदर्श सर्वागीण व्यक्तित्व की संरचना कर आदर्श आधुनिक समाज हेतु विश्व नागरिक बनाने का पथ प्रशस्त करने का लक्ष्य है । इसमें दीक्षा ग्रहण करने के लिए धर्म, सम्प्रदाय, जाति, रंग, लिंग भेद का कोई आधार नहीं है। इसमें वे सभी लोग आ सकते हैं जो आदर्श मानव समाज के निर्माण के इच्छुक हैं । हां, इसके आधारभूत सिद्धान्तों का जीवन में अनुपालन करना परमावश्यक है तथा तदनुरूप जीवन को संवारने के लिए कटिबद्ध रहना है । इसके सिद्धान्त 'शीलसूत्र' तथा 'कुलाष्टक' में समाविष्ट हैं जिन्हें आग्रह करने पर किसी भी व्यक्ति को निःशुल्क भेजने की व्यवस्था है । इसके लिए आवश्यक डाक खर्च के लिए डाक स्टाम्प भेज देना होगा । इसके शिविरों में ध्यान, योग तथा विभिन्न साधनाओं में भाग लेने के लिए आवश्यक राशि सूचना मिलने पर भेज देनी होगी ताकि उनकी व्यवस्था में किसी प्रकार का व्यवधान न हो । इसके संबंध में व्यक्तिगत जिज्ञासा के समाधान हेतु जवाबी पोस्टकार्ड या लिफाफा संलग्नकर भेज दें । आपकी जिज्ञासा का समाधान भैरव मंडल के द्वारा शीघ्र भेजने की व्यवस्था है । इस नए आध्यात्मिक समूह के सदस्य साधक के रूप में आपका स्वागत है । आप शिष्य, साधक, प्रेमी और जिज्ञासु के रूप में इस संस्था से अभिन्न रूप में जुड़ सकते हैं। शिष्य तथा साधक के रूप में दीक्षा लेना आवश्यक है जबकि प्रेमी तथा जिज्ञासु के रूप में आपका सहयोग अपेक्षित है जिससे भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवन प्रदान करने के यज्ञ में आपका सहयोग पाकर हम गौरवान्वित हो सकें ।

समूह के प्रशासनिक तथा सामाजिक ढांचे की जानकारी देना कई कारणों से युक्ति संगत लगता है क्योंकि योग-साधना से ही संभव है चेतना का उर्ध्वारोहण । आप इसके स्वरूप को समझ सकें तथा इसके संबंध में थोड़ी जानकारी पा सकें । इस समूह के सिद्धान्त योगिनी कौल तथा अवधूत मत के आदर्शो पर आधारित है । अवधूत दत्तात्रेय जी आदि गुरु के रूप में पूज्य हैं तथा जूना अखाड़े के परम सिद्ध तथा परमहंस अवधूत भगवान जसन दास जी के आशीर्वाद स्वरूप उनके शिष्य अवधूत कृपानंदनाथ जी इसके मार्ग गुरु हैं । अवधूत नाथ योगियों तथा संन्यासियों के मार्ग दर्शन में यद्यपि शाक्तमत से पराशक्ति की उपासना इसमें प्रमुख है तथापि वैष्णव, शैव, गणपत्य तथा सौर्य मतावलंबियों की भी दीक्षा का विधान करते हुए उन्हें अध्यात्म-पथ पर आरूढ़ करने की परम्परा भी है । ९ वर्ष से १८ वर्ष के साधकों को निशुल्क दीक्षा दी जाती है ।

हमारा ट्रस्ट : शिवा-शिव समूह इन्टरनेशनल ट्रस्ट नाम से निबंधित संस्था शिवा-शिव समूह के सभी आय-व्यय स्रोतों पर नियंत्रण रखता है । शिवा-शिव समूह के मद में जो भी धन राशि दान, शुल्क, दक्षिणा के रूप में प्राप्त होती है वह ट्रस्ट के बैंक खाते में संग्रहित होती है तथा आवश्यकतानुसार कार्य की आवश्यकतानुरूप आबंटित की जाती है । इसकी धनराशि साधना-शिविरों, पर्व-उत्सवों तथा विभिन्न आध्यात्मिक गतिविधियों पर खर्च की जाती है जिसकी स्वीकृति ट्रस्ट तथा भैरव मंडल की संयुक्त बैठक में ली जाती है । फिर वह राशि भैरव मंडल के सुपुर्द कर दी जाती है तथा इसकी सार्वजनिक उद् घोषणा समूह के स्थापना पर्व में भैरव मंडल के सचिव अपने वार्षिक प्रतिवेदन में करते हैं ।

अभी चूँकि समूह अपनी प्रारंभिक अवस्था में है इसकी गतिविधियों के संचालन के लिए इसके पास पर्याप्त कोष नहीं है । जो भी सज्जन जिस विधि से इसे दान देना चाहें, चाहे वह राशि कुछ भी क्यों न हो बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से भेज सकते हैं । एक लाख रुपये से अधिक राशि दान देने वाले दाता अपनी इच्छा, यदि कोई हो तो उसे अपने पत्र में लिख भेजें। भैरव मंडल उनको बुलाकर अपनी बैठक में उस बिन्दु पर विचार-विमर्श कर उनकी इच्छा का भरपूर सम्मान देगा । वे स्वयं भी उस कार्यवाही में भाग लेकर अपना विचार स्पष्ट कर सकते हैं । इस ट्रस्ट के ग्यारह सदस्य हैं जो **मार्ग गुरु अवधूत कृपानंदनाथ** के संरक्षण में इसकी व्यवस्था तथा संचालन के गुरुतर भार का निर्वहन करते हैं । सदस्य हैं– **१. भैरव भैरवानंदनाथ, २. भैरव अशेषानंदनाथ, ३. भैरव अमृतानंदनाथ, ४. भैरव चिदानंदनाथ, ५. भैरव योगानंदनाथ, ६. भैरव प्रबुद्धानंदनाथ, ७. भैरव सर्वदानंदनाथ, ८. भैरव दीनानंदनाथ, ९. भैरव ब्रजानंदनाथ** जो इसके प्रवक्ता तथा मार्ग गुरु के आप्त सचिव भी है। श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ साधकों का मनोयन कर श्री पूज्य पाद मार्ग गुरु अवधूत कृपानंदनाथ के द्वारा भैरव-मंडल का गठन किया गया है । भैरव-मंडल के सदस्य समय-समय

पर अपनी बैठक का आयोजन कर शिवा-शिव समूह की गतिविधियों पर चर्चा करते है तथा इसके विकास की योजना बनाकर उसका प्रत्यक्षतः कार्यान्वयन करते हैं । समूह के पर्व-उत्सव, समारोहों, शिविरों तथा सभी तरह के कार्यकलापों के लिए धन-संग्रह, उसका आबंटन तथा उसके सही ढंग से व्यय करने की प्रक्रिया को नियोजित तथा नियंत्रित करते हैं । इसकी समय-समय पर सूचना भैरव-मंडल की ओर सार्वजनिक की जाती है तथा भाग लेने वाले इस संबंध में सीधे भैरव-मंडल से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं । इसके सदस्य है– **सर्वश्री भैरव दिव्यानंदनाथ (अध्यक्ष), भैरव भैरवानंदनाथ (कार्यकारी अध्यक्ष), भैरव योगानंदनाथ, भैरव ज्ञानानंदनाथ, भैरव अमृतानंदनाथ, भैरव प्रबुद्धानंदनाथ, भैरव प्रभानंदनाथ, भैरव आस्थानंदनाथ, भैरव व्रजानंदनाथ (मार्ग गुरु के आप्त सचिव तथा प्रवक्ता) तथा भैरव धरानंदनाथ ।**

हमारे क्षेत्राधिकारी : भैरव-मंडल के कार्यो को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए क्षेत्रवार प्रभारी साधक हैं । भैरव का मनोनयन भी पूज्यपाद सर्वतंत्र स्वतंत्र परम वैष्णव कौलाचार्य १००८ श्री श्री अवधूत कृपानंदनाथ जी के द्वारा किया गया है । भैरव-मंडल तथा साधकों के बीच महत्वपूर्ण सूत्र हैं ये हमारे कर्मठ, तपस्वी तथा लगनशील क्षेत्राधिकारी जो अपने क्षेत्र में साधकों की गतिविधियों का नियंत्रण एवं संचालन करते हैं । समय-समय पर भैरव-मंडल के निर्णयों तथा सूचनाओं को साधक तक पहुँचाना तथा उनके अनुपालन की दिशा में इनका योगदान अनिवार्य है । प्रकाशन, दीक्षा, शिविरों तथा पर्वो में अपने क्षेत्र का योगदान सुनिश्चित कर भैरव-मंडल को जानकारी देना भी इनका महत्वपूर्ण कार्य है । जिस किसी साधक को किसी सामग्री या पुस्तक की आवश्यकता होती है वे उसकी विस्तृत सूचना अपने क्षेत्राधिकारी को देते हैं तथा उसे भैरव-मंडल से प्राप्त कर उसे अपने साधक को उपलब्ध कराना भी इनका कर्तव्य हैं ।

क्षेत्राधिकारियों की सूची निम्न प्रकारेण है–

दिल्ली – (i) भैरव प्रपन्नानंद नाथ (मनोजकुमार पांडेय)
(ii) स्वामी सुप्रभानंद नाथ (संतराम जी)

अयोध्या – श्री राम प्रताप त्रिपाठी

विंध्याचला– स्वामी(श्री नरेन्द्र कुमार पांडेय उर्फ नन्हें जी)
जिस किसी साधक या व्यक्ति को विंध्यक्षेत्र का दर्शन, पूजन-सामग्री या फिर ठहरने आदि की कोई भी समस्या हो वे इसका समाधान इनसे कर सकते हैं । ये शिवा-शिव समूह के साधक ही नहीं, तीर्थ पुरोहित भी हैं ।

सतना (म.प्र.)– स्वामी(श्री गौरी शंकर मिश्र)

पटना – (i) भैरव अखिलेश्वरानंदनाथ

सीतामढ़ी – (i) स्वामी श्री अभय कुमार गर्ग

मुजफ्फरपुर – भैरव अखंडानंदनाथ

सिवायपट्टी – भैरव परमानंदनाथ

जारनडीह – भैरव महदानंदनाथ

आरा – स्वामी श्री सत्य नारायण पांडेय

विहिया – भैरव दीनानंदनाथ

रांची – भैरव व्रजानंदनाथ (मार्ग गुरु के अप्त सचिव एवं प्रवक्ता, शिवा-शिव समूह)

रोहतास एवं कैमूर– भैरव अभयानंदनाथ

हमारे प्रकाशन : 'शीलसूत्र' तथा 'कुलाष्टक' निःशुल्क भेजने की व्यवस्था है । निम्न पुस्तकें हमारे यहां से प्रकाशित तथा प्रकाश्य हैं । इन पुस्तकों की सर्वसाधारण की आवश्यकताओं के अनुरूप तथा विशिष्ट सिद्धान्तों के संदर्भ ग्रंथ के रूप में रचना की गई है । इन पुस्तकों को दिल्ली शाखा के भैरव प्रभारी (प्रकाशन) से मंगाया जा सकता है । क्षेत्राधिकारियों तथा भैरव-मंडल के सदस्यों से भी इसे भेजने का अनुरोध किया जा सकता है जिसे दिल्ली शाखा से अनुरोध करने पर भेजा जाएगा:

१. *श्री गणेश तंत्र* –	रु. ५१/-
२. *गाणपत्य तंत्र की वैज्ञानिक भूमिका*–	रु. २००/-
३. *हवन पद्धति* –	रु. १००/-
४. *पुरश्चरण पद्धति* –	रु. १००/-
५. *भैरव वरिवस्या रहस्यम्*–	रु. १५१/-
६. *महाविद्या रहस्यम्*–	रु. ५१/-
७. *वनदुर्गा रहस्यम्*–	रु. ५१/-

हमारे सामग्री भंडार : शिवा-शिव समूह के सामग्री भंडार से प्रामाणिक हवनादि तथा अन्यान्य सामग्रियां जो पूजोपचार के लिए तथा औषधि रूप में प्रयुक्त होती हैं, प्राप्त की जा सकती हैं । उनका मूल्य तथा श्रेणी अगले अंक में प्रकाश्य । इसके प्रभारी स्वामी कलानंद नाथ हैं, जो रत्न भंडार, नवग्रह तथा उनसे संबंधित रत्नों के लिए अधिकृत हैं। आपके आग्रह पर वांछित रत्नों को भेजने की व्यवस्था की जा सकती है । अन्यान्य रत्न तथा काष्ठ औषधियों के लिए भी हमारे रत्न भंडार से सम्पर्क किया जा सकता है ।

हमारे यंत्र भंडार : प्रामाणिक यंत्रों को भी हमारे यहां से प्राप्त किया जा सकता है । शास्त्र एवं परम्परा सम्मत रूपरेखा के यंत्रों का मिलना अभी दुर्लभ हो गया है किन्तु हम वैसे ही प्रामाणिक यंत्रों को उचित मूल्य पर उपलब्ध कराने की योजना बना रहे हैं । अगली पत्रिका में उनके संबंध में विशेष जानकारी दी जाएगी ।

विजयादशमी एवं संभावना-पर्व का संदेश

(11.11.1999)

आत्मस्वरुप,
नवरात्रि में नियम-विधि पूर्वक
आपने व्रतकर भगवती दुर्गा विंध्यवासिनी की पूजार्चा की
तथा विजयादशमी के पावन पर्व पर मुझे आमंत्रित कर
अपने भक्ति-भाव से मुझे प्रसन्न तथा संतुष्ट किया
उसके लिए मैं साभार आपको अपने पुनीत आशीर्वचनों से
समादृत करता हूँ ।
शिवा-शिव समूह मेरा चिन्मय विग्रह है
तथा इसके प्रति समर्पण
इसके विकास के लिए संकल्प-भाव
गुरु के स्थूल विग्रह का भी सम्मान है;
अन्यथा अपने स्थूल विग्रह से आपके लिये
मैं कुछ भी नहीं कर सकता।
यह स्थूल विग्रह सचराचर जीवों के शरीर की तरह
दुःख-सुख, रोगारोग्य, त्रिविधतत्व से संक्रमित
विभिन्न समस्याओं से संघर्ष करता हुआ
एक दिन अपनी यात्रा पूरी कर
पंच महाभूतों में विलीन हो जाएगा
फिर, मुझसे किसी का कोई संपर्क नहीं हो सकेगा
तब जो भी संपर्क होगा, जो भी 'वरदान मिलेगा
या जो भी मिलेगा, वह मेरी समाधि, मेरी वेदी से ही मिलेगा
जिस पर कोई विग्रह नहीं होगा ।
जहां मेरे लोग, मेरे शिष्य एकत्र होकर जो भी स्थान मुझे देंगे
वह स्थान मेरी दिव्यता एवं पवित्रता से
शक्ति-पुंज बन जाएगा और सर्वसाधारण के हित में होगा
मेरे संपर्क हेतु जो भी आयेंगे
उनसे मेरा संपर्क, मेरा सान्निध्य बन पायेगा,
किसी भी सदगुरु के द्वारा जो संस्था, जो संगठन
जो अखाड़ा, जो सम्प्रदाय निर्मित होता है
वह उसका चिन्मय विग्रह होता है
वह अनादि एवं अनन्त है, वह द्वैताद्वैत विवर्जित है
संसार के सभी गुरुओं को
इसकी आवश्यकता प्रतीत होती रही है
चाहे–वे दत्तात्रेय जी हों, कीनाराम जी हों, गोरखनाथ जी हों
तीर्थकर महावीर हों, महात्मा बुद्ध हों, हजरत मुहमम्द हों
या फिर कोई भी क्यों न हो
कबीर, शंकराचार्य, रामानुज, रामानंद जो भी हों
उन्हें अपनी चैतन्य शक्ति को संजोने के लिये
अपने ज्ञानामृत के संग्रह एवं आस्वादन हेतु
अपने संदेश की ज्योति से मानवता को
चिरकाल--तक आलोकित एवं मार्ग दर्शन हेतु
दीक्षित एवं समर्पित शिष्यों के समूह के
निर्माण की आवश्यकता हुई है अन्यथा
आज भगवान बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य,
रामानंद जी प्रभृत मानवता के दिव्य ज्योति स्तंभों का
हमें पता ही नहीं चलता, वह ज्योति तिरोहित हो जाती
और इसीलिए
मैंने भी अपने सद्शिष्यों को लेकर
एक समूह बना लिया
और अपनी दिव्य एवं पवित्र चिन्मय विग्रह को
स्थापित कर दिया शिवा-शिव समूह में
आप मुझे अपना मार्ग गुरु मानते हैं
यह आपकी महानता है और आप मुझे आदर देते हैं
अपनी भक्ति से मुझे भाव विभोर बना देते हैं
यह मुझ पर आपका ऋण सदा बना रहेगा
और यथाशक्ति का मैं अपनी पराम्बा विंध्यावासिनी से
आपके कल्याण की सदा सर्वदा प्रार्थना करता ही रहूँगा ।
यह जो योगनी कौल तथा श्री नाथजी के

उच्चतम आदर्शों को लेकर
आदिगुरु भगवान दत्तात्रेय जी के सार सिद्धान्तों को लेकर
आने वाले युगों में जो सर्वसुलभ अध्यात्म होगा
सर्वस्वीकृत धर्म होगा
सर्वश्रेष्ठ आचरण होगा
गिरनारी शैव परम्परा में शाक्त सिद्धान्तों का
अनूठा हीरक रत्न हमारा शिवा-शिव समूह है
जिसका परिवर्द्धन, पल्लवन तथा अभिवर्द्धन
आपके हाथों में सौंपकर निश्चिन्त हो गया हूँ।
चिरस्मरणींय, मेरे परमात्मन पूज्यपाद श्री गुरु महाराज को
उनके मानवीय एवं आध्यात्मिक संदेशों को
हर मानव, हर भू-भाग तक पहुँचाने का दायित्व
मैं अपने समूह को सौंपता हूँ।
मुझे पूर्ण विश्वास है
जूना अखाड़े से जो पौधा मैंने
विंध्यावासिनी के चरणों में, विंध्यक्षेत्र में लगाया है
उसे आप पुष्पित, पल्लवित एवं सुवासित करने में
किसी प्रकार की न्यूनता नहीं रहने देंगे।
आप इस नन्हें बिरवे को गगनचुम्बी वृक्ष के
रूप में फलने-फूलने का अवसर देंगे।
इस शिवा-शिव समूह को
आप जातिवाद, कुलशील के मिथ्या अभिमान, परम्परावाद,
संकीर्ण एवं दूषित मनोभावों की राजिनीति एवं कूटनीति का
अखाड़ा नहीं बनने देंगे
तथा इसकी दिव्यता एवं पवित्रता को सुरक्षित रखेंगे।
अपनी एकता एवं बंधुत्व की भावना से
मुझे तृप्त रखेंगे, मुझे पुलकित प्रसन्न रखेंगे।
इस द्वैताद्वैत विवर्जित पंथ का पोषण
आप भेदाभेद विवर्जित ज्ञानी बनकर करेंगे।
हमारे पंथ में गुरु की आज्ञा एवं उपदेश के प्रति
संपूर्ण श्रद्धाभाव रखना ही समर्पण है
गुरुवाक्य के प्रति उपेक्षाभाव
उसका आलोचन–प्रत्यालोचन
(अध्यात्मिक जिज्ञासावश पृच्छा करने की मनाही नहीं है)
व्यर्थ के जागतिक, प्रापंचिक प्रश्न
गुरु के प्रति द्वेष और कुटिलभाव रखना
गुरु की उपेक्षा है तथा अति निंदा रूपी महापाप है।
गुरु को संपूर्ण रूप से स्वीकार करना होता है।
तभी उसकी कोई उपयोगिता संभव है
अन्यथा व्यर्थ है गुरु-दर्शन भी
संपूर्ण समर्पण के बिना गुरु तत्व की अनुभूति नहीं
दीक्षा लेने के पूर्व ही
पग-पग पर गुरु की परीक्षा होनी चाहिये।
दीक्षा के उपरान्त
गुरु को समग्ररूप से ग्रहण करना होता है
क्योंकि आपका आकर्षण बौद्धिक तल पर घटता है
और आप दीक्षा ले लेते हैं
तो वैसी दीक्षा की कोई उपयोगिता नहीं
–बिल्कुल अधूरी दीक्षा
कोई स्वार्थ, कोई शर्त, कोई लिप्सा यदि हो तो
दीक्षा व्यर्थ हो जाती है
क्योंकि वैसे लोग समर्पण कर ही नहीं पाते
सद्शिष्य होने की उनमें पात्रता नहीं होती
परन्तु यदि कोई इतना खो जाए गुरु के चिन्तन में,
विग्रह में, उसके भाव में
कि उसके साथ हर क्षण भावोत्कर्ष में ले जाए
उसके प्रेम में इतना डूब जाए आप
सबकुछ उसका अपना-अपना लगे
परम शांति को उपलब्ध हो जाएं
उसकी हर चेष्टा परम प्रिय लगने लगे
आनंद और शांति की परम अनुभूति हो
जब किसी व्यक्ति के प्रति इतना आकर्षण हो जाए
दिव्य और पवित्र
कि वह बौद्धिक विलास की वस्तु न होकर
प्रेमास्पद बन जाए, हृदयांगन में उतर जाए
मस्तिष्क, बौद्धिकतल के झरोखों से
तो उसे ही अपना गुरु बना लें,
वही आपके लिए सद् गुरु हो सकता है

अन्यथा दीक्षा भी एक बंधन है
नहीं टूटने वाला बंधन निर्मित न करें ।
दीक्षा के बाद कुछ भी समर्पित करने लायक शेष न रहे
जो कुछ था समर्पित हो जाए तभी दीक्षा पूर्ण होती है
तभी अध्यात्म के दुर्गम पथ के
पथिक की पात्रता आपमें आ सकती है
और आपका उद्देश्य भी यही होना चाहिए
यदि कोई अन्यथा उद्देश्य या भाव हो
तो उसे विसर्जित कर दें
अन्यथा समूह आपके लिए उपयोगी न हो सकेगा
इसे छोड़ देना ही श्रेयस्कर है
इसके लिए किसी आवेदन की आवश्यकता नहीं है
बस चुपचाप छोड़ दें
मौन समूह से नाता तोड़ दें
फिर कभी याद भी न करें–मुद्रामाला सौंप दें ।
जो शिष्य मुझे सब कुछ मानता हो
मगर शिवा-शिव समूह के प्रति उपेक्षाभाव रखता हो
वह धीरे-धीरे गुरु के चिन्मय विग्रह से दूर होता जाता है
और एक दिन स्वतः स्थूल विग्रह की उसे याद तक नहीं रहेगी।
दीक्षा–एक ईश्वरीय अनुकम्पा है
यह एक घटना है–संयोग से घटित होती है
बस घट जाती है
जो दीक्षा लेने की सोचकर आते हैं
वे विना लिए लौट जाते हैं
जिन्होंने विचार तक नहीं किया
वे दीक्षित होकर
हमेशा-हमेशा के लिए गुरु से अभिन्न हो जाते हैं ।
एक दिव्य और परमात्म घटना है
इसे न कोई देता है और न कोई लेता है
बस घट जाती है,
परमात्मा का अवतरण चुपचाप हो जाता है
और उस अवरतण का गुरुमात्र साक्षी है, द्रष्टा हैं–बस
आपको संसार का पता है, परमात्मा का नहीं ।
गुरु को दोनों का पता होता है

वह द्रष्टा है साक्षी है इस घटना का
क्योंकि गुरु परम्परा से होती हुई
वह चिन्मय शक्ति आपके गुरु में एकत्र होती है
गुरु दिव्य चेतना का पूंजी भूत रूप ही तो है
और आपमें आप की पात्रता के अनुरूप
वह दिव्यशक्ति उतरती है जिसे शक्ति पात कहते हैं
और उसी का साक्षी बन जाता है गुरु
आपका गुरु दिखाई देते हैं
किन्तु गुरु को परमात्मा भी दिखता हैं ।
इसीलिए गुरु के प्रति शिष्य का अनुग्रह भाव
जो भी सेवा सत्कार आप करते हैं
यह उसी अनुग्रह भाव का प्रतीक है ।
गुरु को वह भी स्वीकार्य नहीं,
कोई आवश्यकता उसे नहीं है आपकी सेवा भक्ति की ।
वह स्वयं में पूर्ण है परमात्मा की तरह
क्योंकि उसे परमात्मा का अनुभव है
जिसे परमात्मा का अनुभव हो जाए
उसे और किसी से कोई संबंध नहीं,
समर्पण आपका दायित्व हैं,
श्रद्धाभक्ति आपका धर्म है
उससे मेरा कुछ भी लेना-देना नहीं
फिर मुझ से पूछकर अलग हो जाने का कोई तुक नहीं ।
जो मेरे प्रति प्रेमाप्लावित न हों
जिन्हें अपने समर्पण में कोई बाधा मालूम हो
जिनके समर्पण में कोई अनुबंध या शर्त हो
वे बस चुपचाप अपने जगत में वापस जाने के लिए स्वतंत्र है
फिर जो जी में आए, जैसा जीवन चाहें वैसा जियें ।
किसी भी शिष्य के पलायन से गुरु सदा निर्लिप्त रहता है
यह तो शिष्य को सोचना है क्योंकि वह सूत्र
जिससे परमात्मा की अनुभूति संभवथी, खो जाता है ।
गुरु साक्षी, शिष्य ग्रहण करने वाला और परमात्मा देने वाला
त्रयात्मक समर्पण यदि संभव नहीं तो दीक्षा आपके लिए
कुछ भी करने में समर्थ नहीं
कोई रूपान्तरण घटित नहीं हो सकता ।

गुरु के प्रति, समूह के प्रति और परमात्मा के प्रति
इन तीनों तल पर जब तक समर्पण नहीं होता
शिष्य अधूरा रह जाता है
श्रद्धा यदि पूरी न हो तो आंतरिक संबंध नहीं बन सकते
गुरु-शिष्य का संबंध कोई जागतिक नहीं है
गुरु से आपका कोई संबंध नहीं, फिर भी,
उससे सभी तरह के आपके संबंध जुड़ जाते हैं,
बड़ा ही जटिल संबंध है–कुछ भी नहीं, फिर भी सब कुछ।
पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण से भी पूर्ण
इससे कम से कुछ भी नहीं होने वाला है
हृदय के तार जुड़ नहीं पाते,
यदि श्रद्धा में किंचित भी न्यूनता हो
क्योंकि ऐसी श्रद्धा अहंकार की उपज है
वह श्रद्धा असीम नहीं, सीमित है
नपीतुली, छद्‌म एवं चातुर्य पूर्ण।
बस, परिधि पर आपका मेरा कोई संबंध बन जाता है
देखने में गुरु-शिष्य का संबंध लगता है
मगर वैसा है नहीं,
परिधि पर बने संबंध टूट जाते हैं
अन्तर का संबंध बन नहीं पाता।
केन्द्र पर संबंध बने तो वह अटूट बन जाता है
बिल्कुल शाश्वत और निश्चल सुदृढ़
और बिना इस तरह का संबंध बने
परमात्मा की अनुभूति, परमात्मा का दर्शन असंभव है।
यह जगत का नियम है कि बिना पात्रता के
कुछ भी नहीं मिलता
यह ईश्वरीय नियम भी है कि पात्रता से अधिक
किसी को कुछ नहीं मिलता
यदि नहीं मिलता तो आप अपनी पात्रता का विश्लेषण करें
कहीं कुछ न्यूनता है जिसके पूरा होते ही
आपका प्राप्तव्य आपको प्राप्त हो जाएगा।
गुरु में दोष-दर्शन करने से अच्छा है
अपना दोष देखें और दूर कर पात्रता अर्जित करें।
आप वैसे ही है
जो परिश्रम के बिना,
बिना साधना के
सब कुछ पा जाना चाहता है
मन हमारा आकांक्षा बहुत के लिए करता है
श्रम बहुत कम के लिए करता है
यह अन्तर आत्मघाती है
अपने अहंकार को नष्ट करें
और गुरु के प्रति पूर्णातिपूर्ण श्रद्धा रखकर
संपूर्ण समर्पण-भाव रखकर करें।
बुद्धि और अहंकार से उपजी श्रद्धा के प्रति जगें
अन्यथा आपका और मेरा मिलना केन्द्र पर नहीं होगा
परिधि पर निर्मित संबंध
न तो उपयोगी होते हैं और न निभ ही पाते हैं
आपमें उस उर्जा की मात्रा न्यून है
जो आपको केन्द्र में स्थापित कर सके
गुरु के प्रति कोई शाश्वत संबंध घटित हो सके
केन्द्रीभूत हो जाए तभी कोई यात्रा संभव है
तभी कोई समीकरण बन सकता है।
गुरु सूर्य बन जाए
ग्रहों की तरह उनकी परिक्रमा करने लगें
आपकी चेतना गुरु के चतुर्दिक घूमने लगे
तभी वह आप के अस्तित्व का केन्द्र बन सकता है।
व्यावसायिक दृष्टिकोण निर्मित न करें
गुरु पूर्ण समर्पण चाहता है–थोड़ा भी कम नहीं
क्योंकि वह आपको अपनी पूर्ण संपूर्णता में अपनाता है
आत्मा से आत्मा का संबंध निर्मित होना चाहिए
शारीरिक तल पर नहीं, बौद्धिक तल पर नहीं
बस आत्मिक तल पर
आप इस मिलन को यदि स्वीकार करते हैं।
तभी गुरु-शिष्य का संबंध निर्मित होता है
बस आप गुरु में रम जाते हैं, तदाकार हो जाते हैं।
गुरु के विसर्जित होना ही शिष्य की पूर्णता है
शरीर, हृदय-बुद्धि, मन के पार है वह केन्द्र
जहां अस्तित्व है

और वहां पहुंचे बिना गुरु-दर्शन दुरस्साध्य है
विना गुरु-दर्शन के
कोई भी प्रगाढ़ संबंध निर्मित नहीं हो सकता।
केन्द्र में जाने का
गुरु के सम्यक् दर्शन का मार्ग है
जप, ध्यान और चक्रार्चन
जो मार्ग मिला है उसे सम्यक् रूप से समझें
उसके अनुसार अपना आचरण बनाए
'शील सूत्र' के आदर्शो को आत्मसात करें
शीघ्रतिशीघ्र तांत्रिक-मांत्रिक बनकर
चमत्कार-प्रदर्शन की आकांक्षा न पालें
पाखंड आडम्बर से चिपके रहकर,
अध्यात्म और धर्म का विकास नहीं किया जा सकता।
गुरु का स्थान सर्वोपरि है
गुरु-शिष्य के संबंधों में किसी प्रकार की
शिथिलता या व्याक्तिक्रम न आने दें।
विद्रोह और विरोध–दोनों ही गुरु के प्रति अपराध है
गुरु के आचरण की समालोचना से
आपका कुछ भी हित होने वाला नहीं है
इससे आपकी अश्रद्धा और अपात्रता का ही संकेत मिलेगा
गुरु वचनों के प्रति आदर एवं श्रद्धा रखकर
उसके अनुसार रूपान्तरण करें
कुलार्णव तथा अन्यान्यतंत्र ग्रंथों का अनुशीलन कर
अपने जीवन में उसे रूपायित करें
और सद्शिष्य बनकर शिवा-शिव समूह के प्रति
अपनी श्रद्धा, अपनी भक्ति और अपना समर्पण भाव
दिव्यातिदिव्य दृष्टिकोण रखते हुए
दृढ़ता से जमायें रखें
क्योंकि आपके श्री गुरु का यह चिन्मय विग्रह है
और इसे सजा-संवारकर
इसके कार्यक्रमों में अपना तन-मन-धन अर्पित कर
इसे इतना सफल एवं सशक्त बनायें
कि समस्त विश्व के आध्यात्मिक शिखर पर
इसकी प्रभा से समस्त विश्व लोकित हो जाए।
'शील सूत्र' 'कुलाष्टक', का सतत् अध्ययन
अनुशीलन करते रहें,
उसे जीवन में उतारें।
ध्यान-जप का पाथेय लेकर
अध्यात्म पथ पर अपनी यात्रा अनवरत बनाए रखें,
इन्हीं शुभकामनाओं एवं आशीर्वचनों के साथ,

-- अवधूत कृपानंदनाथ

मार्ग गुरु, शिवा-शिव समूह, राँची

अनामा

(शिवाशिव समूह की मुख्य पत्रिका)

प्रस्तुत सम्पर्क सूची भविष्य में प्रकाश्य 'शिवा-शिव समूह - शिष्य-विवरण कोश' हेतु दी गई है। सभी गुरुभ्राता/गुरुबहिनों से अपेक्षा है, कि वे अपनी जानकारी के अनुसार आवश्यक विवरण सहित, समूह के प्रकाशन विभाग (दिल्ली शाखा) को निम्न पते पर प्रेषित करेंगे।

शिवा-शिव समूह (प्रकाशन विभाग) द्वारा : ईश्वर सिंह, अभिनवं कम्प्यूटैक,

एच-२५-ए, जय प्रकाश नगर, दिल्ली-११००५३, दूरभाष - ०११-२१८३६८५

सम्पर्क सूची

क्र.सं.	नाम	मार्गीय नाम (भै०/स्वा०)	पता (सम्पर्क)	स्थायी पता	दूरभाष

वार्षिक सदस्यता प्रपत्र

पत्रिका की वार्षिक सदस्यता हेतु इस प्रपत्र में वांछित विवरण रु०.**141/-** प्रति व्यक्ति) के मनिऑर्डर / बैंक ड्राफ्ट के साथ ऊपर दिए गए पते पर (प्रकाशन विभाग, दिल्ली) को प्रेषित करें

क्र.सं.	नाम	मार्गीय नाम (भै०/स्वा०)	पता (सम्पर्क)	स्थायी पता	दूरभाष

अनामा

(शिवाशिव समूह की मुख्य पत्रिका)

सम्पर्क सूची

क्र.सं.	नाम	मार्गीय नाम (भै०/स्वा०)	पता (सम्पर्क)	स्थायी पता	दूरभाष

वार्षिक सदस्यता प्रपत्र

क्र.सं.	नाम	मार्गीय नाम (भै०/स्वा०)	पता (सम्पर्क)	स्थायी पता	दूरभाष